गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। उनके नीचे बैठा है मुंशी जो व्याख्या का दस्तावेज़ लिख रहा है। भारत में लेखन-कला का यह संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

नरेशचन्द्र चतुर्वेदी

साहित्य अकादेमी

Gayaprasad Shukla 'Sanehi' : A monograph by Naresh Chandra Chaturvedi on the modern Hindi poet. Sahitya Akademi, New Delhi (1988), SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15.00

प्रथम संस्करण : 1988

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोजशाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

ब्लाक V-बी, रवीन्द्र सरोवर स्टेडियम, कलकत्ता 700 029

29, एलडाम्स रोड, तेनामपेट, मद्रास 600 018

172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400 014

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15.00

मुद्रक

भारती प्रिण्टर्स

दिल्ली 110 032

अनुक्रम

भूमिका	7
जीवन-परिचय	18
साहित्यिक अवदान	36
सनेही मंडल	66
परिशिष्ट : चयन	
सनेही जी की रचनाएँ	72

भूमिका

जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं,
वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।

इन अमर पंक्तियों के रचयिता सनेही हिन्दी साहित्य के उन आचार्य कवियों में से हैं, जिनका स्थान ब्रजभाषा काव्य-रचना से आरम्भ होकर खड़ी बोली के श्रेष्ठ परिष्कारकर्ता कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। साथ ही, प्राचीन छन्द-परम्परा को लगातार जीवित या जाग्रत रखकर बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के लगभग पचास वर्ष तक काव्य-क्षेत्र में जो भी भाव एवं शिल्पगत आन्दोलन चले, उनके प्रभावशाली बनते जाने के बावजूद सनेही जी ने स्वयं तथा अपने अनेक शिष्यों के द्वारा उत्कृष्ट छन्दों की रचना करके तथा कराके हिन्दी कविता को सशक्त बनाया। ब्रज-भाषा में अत्यधिक प्रचलित छन्द, सवैया तथा घनाक्षरी को जो निखार खड़ी बोली में सनेही तथा उनके मण्डल के कवियों ने प्रदान किया वह हिन्दी साहित्य के इति-हास की महत्त्वपूर्ण घटना है। भारतीय समाज की चिन्ताधारा उस समय कष्ट और पीड़ा की पराकाष्ठा तक पहुँची हुई थी। अधिकांश देशवासी विभिन्न कार्यों में लगे होकर भी निरीहता और असुरक्षा के शिकार थे। पूरा समाज दुःखी और व्याकुल था। उसकी व्यथा-कथा जिसमें उभरी, राष्ट्रीय चेतना के ऐसे विविध आयाम सनेही और उनके सहयोगी कवियों में मुखरित हुए। आधुनिक हिन्दी कविता में सनेही के द्वारा पहली बार किसान, मज़दूर, सामाजिक कुरीतियों जैसे दहेज, बाल विवाह, बाल विधवा, छुआछूत इत्यादि विषयों पर व्यापक रूप से कविताएँ रची गयीं। साथ ही राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्ति के लिए सर्वस्व समर्पण की भावना को स्वर मिला। इस धारा का नेतृत्व हिन्दी कविता में सनेही ने 'त्रिशूल' के नाम से किया और इसी के समानान्तर एक दूसरी धारा का नेतृत्व माखनलाल चतुर्वेदी ने 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से एवं बालकृष्ण शर्मा ने 'नवीन' के नाम से किया। यहाँ यह बात भी स्मरणीय है कि माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा ने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम में भी भाग लेकर काव्य-रचना के साथ कारावास भी भोगा था। परन्तु सनेही ने कारावास की यात्रा न करते हुए भी बीसवीं सदी के

लगभग आधी शताब्दी के राष्ट्रीय संघर्ष का, जिसका नेतृत्व समय-समय पर लोकमान्य तिलक, गोखले, महामना मालवीय, महात्मा गाँधी, सुभाषचन्द्र बोस और पं. जवाहरलाल नेहरू ने किया, उसका जितना सम्यक् चित्रण सनेही ने अपनी राष्ट्रीय रचनाओं के द्वारा किया है उतना कदाचित् अन्य किसी भी तत्कालीन हिन्दी कवि ने नहीं किया।

यूँ सनेही ने अपनी मौज में आकर कभी 'तरंगी', कभी 'अलमस्त', कभी 'लहरी-लहरपुरी', इत्यादि उपनामों से भी कुछ लिखा और छापा है। उनकी अनेक रचनाएँ बिना नामों से भी छपी हैं। उनके रचे हुए सैकड़ों बढ़िया छन्द उनके शिष्यों के नाम से भी छपे और प्रसिद्ध हुए हैं, आज उनकी गिनती होना भी कठिन है। सच तो यह है कि सनेही ने अपनी प्रतिभा का उपयोग काव्य-रचना में जितना किया उससे कहीं अधिक कवियों के निर्माण में किया। इस सम्बन्ध में राष्ट्रकवि रामधारीसिंह दिनकर ने ठीक ही लिखा था :

> "किताबें तैयार करने की अपेक्षा कवि तैयार करने की ओर उनका अधिक ध्यान था। किताबें तो उनके शिष्यों ने ज़बर्दस्ती तैयार कर दीं। सनेही जी अपने पद्यों की मंजूषा बनाने को ज़रा भी उत्सुक नहीं थे।···
>
> कवि तैयार करने के सनेही जी के साधन तीन थे—जो कवि उनके सम्पर्क में थे, उनकी कविताओं का वे संशोधन करते थे, साथ ही, उनका मार्ग-दर्शन भी करते थे, यानी उनकी कविताओं को सुधार-सँवारकर उन्हें 'सुकवि' में छापा करते थे। तीसरा उपाय यह था कि कानपुर में कवि-गोष्ठियाँ वे बराबर करते रहते थे और युवकों को प्रोत्साहन देकर उन्हें काव्य के मार्ग पर आगे बढ़ाते थे, यही कारण हुआ कि सनेही जी का ध्यान अपने काव्य-संग्रहों की संख्या बढ़ाने की ओर नहीं गया। उनके जितने शिष्य हुए, वे ही उनकी रचनाओं के प्रतीक थे। संग्रहों के भीतर से नहीं जीकर सनेही जी ने अपने शिष्यों के भीतर से जीने का रास्ता पसन्द किया। कविता का जो वातावरण उन्होंने कानपुर तक तैयार किया, वह अब तक क़ायम है, उन्होंने जो परम्परा बनायी थी, वह चल रही है।"

दिनकर ने जिस परम्परा की ओर ध्यान आकर्षित कराया है, वह उसी घनाक्षरी और सवैया, छन्द शैली का है, जिसका उल्लेख मैंने ऊपर किया है और आगे भी होगा। यहाँ पर यह कहना प्रासंगिक है कि सनेही ने जो वातावरण बनाया, वह कानपुर और उत्तर प्रदेश तक ही सीमित नहीं रहा। सम्पूर्ण हिन्दी क्षेत्र उससे प्रभावित हुआ और कमोबेश रचनाएँ प्रायः सर्वत्र ही पढ़ी-लिखी गयीं। सुप्रसिद्ध कवि दिनकर का नाम उदाहरण के लिए लिया जा सकता है जिनके प्रथम महाकाव्य 'कुरुक्षेत्र' में विभिन्न छन्दों का प्रयोग हुआ है उनमें एक सर्ग में घनाक्षरी तथा एक सर्ग में सवैया छंद प्रयुक्त देखा जा सकता है। स्फुट रचनाओं में तो उस समय गीतों

और छन्दों की भरमार थी ही। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के प्रबन्ध काव्य 'साकेत' में भी अनेक उन पुराने छन्दों की छटा देखी जा सकती है, जिन्हें व्यापक रूप में सनेही ने प्रचारित करके हिन्दी खड़ी बोली की शक्ति और सामर्थ्य का परिचय कराया था।

इसीलिए हिन्दी काव्य धारा की छन्द परम्परा का एक स्कूल जो आधुनिक हिन्दी कविता में छायावाद के समानान्तर चला, उसे सनेही स्कूल के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा। सनेही स्कूल के नाम से हिन्दी कविता में जो पहचान बनती है, वह एक तो भारतीय राष्ट्रीय स्वाधीनता के आन्दोलन की विशिष्ट चर्चा से जुड़ी है और उसकी दूसरी विशेषता है प्राचीन छन्दों में खड़ी बोली हिन्दी के सहज स्वाभाविक शैली के विकास की तथा तीसरी विशेषता है विषय की व्यापकता और नवीनता की अभिव्यक्ति। सनेही मण्डल की ये तीनों विशेषताएँ हिन्दी काव्य-साहित्य में सनेही की अद्वितीय भूमिका के लिए जानी जाती हैं।

पराधीन भारत में सनेही ने जन्म लिया था और स्वतन्त्र भारत में उनका तिरोभाव हुआ। सनेही के जन्म के लगभग ढाई वर्ष पश्चात् भारतीय चेतना की अन्यतम प्रतिनिधि संस्था भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। यह उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध का अन्तिम समय था। बीसवीं सदी का प्रारम्भ भारत राष्ट्र और राष्ट्रभाषा हिन्दी के नये युग-बोध के साथ हुआ। 'सरस्वती' का प्रकाशन और हिन्दी साहित्य के द्विवेदी-युग का काल बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दो दशक हैं। सनेही की तरुणाई भी बीसवीं सदी के आरम्भ के साथ शुरू हुई थी। वे प्रारम्भ से ही ब्रजभाषा के माधुर्य और प्रेम-शृंगार के रीतिकालीन संस्कारों तथा परम्परागत पुराने छन्दों से बँध गये। कवि सनेही का पदार्पण इसी सदी के साथ हुआ। वर्तमान शताब्दी ज्यों-ज्यों अपनी प्रकाश किरणों से भारत और विश्व की चेतना को आलोकित करती हुई आगे बढ़ी, त्यों-त्यों सनेही के कविरूप का विस्तार होता गया। लोकमान्य तिलक और फिर महात्मा गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस की तेजस्विता अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, बालमुकुन्द गुप्त, गणेशशंकर विद्यार्थी और प्रेमचन्द के नेतृत्व में हिन्दी गद्य-पद्य ने केवल भाषा को परिष्कृत ही नहीं किया, वरन् भाव और विचार के नये क्षितिज उद्घाटित किये। जिस प्रकार देश की स्वतंत्रता आने तक देशवासियों की तेजस्विता और संघर्षशीलता ने दुनिया के सामने झण्डे गाड़ दिये, उसी प्रकार साम्राज्यवाद की प्रतीक बनकर देश पर थोपी गयी अंग्रेज़ी भाषा के समानान्तर हिन्दी ने अपनी शक्ति और क्षमता से साहित्य, शिक्षा, ज्ञान, विज्ञान, चिन्तन और मनन की दिशा को आलोक से भर दिया। मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी ने कविता को नया कलेवर दिया। प्रेमचन्द, कौशिक, सुदर्शन, वृन्दावनलाल वर्मा और जैनेन्द्रकुमार जैसे कथाकारों ने कथा-साहित्य को नयी दिशा प्रदान की।

बाबू श्यामसुन्दर दास, रामचन्द्र शुक्ल और राहुल सांकृत्यायन जैसे अनेक महान् विद्वानों ने हिन्दी भाषा और साहित्य को व्यापकता प्रदान की। अन्वेषण, शोध और समीक्षा के नये आयाम दिये। इसी युग में इन्हीं धाराओं के समानान्तर हिन्दी-कविता में एक नयी जीवन-दृष्टि, यथार्थ बोध और सामाजिक जीवन के सम स्तरों पर जुड़ गयी मानसिकता को लेकर सनेही ने हिन्दी काव्य-धारा की एक विशिष्टता का नेतृत्व किया। समग्र रूप में हिन्दी की अपनी भावभूमि, अपनी मिट्टी की सुगन्ध और अपनी जीवन-दृष्टि को लेकर सनेही ने हिन्दी काव्य के एक विशिष्ट स्वरूप को विकसित किया। सनेही के इस ऐतिहासिक कृतित्व में उनके प्रमुख मित्र आचार्य बचनेश तथा रूपनारायण पाण्डेय एवं प्रमुख शिष्य श्री जगदम्बा प्रसाद मिश्र 'हितैषी' तथा श्री अनूप शर्मा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। सनेही जी ने अपनी काव्य-गर्वोक्तियों के रूप में लिखी कविताओं में अपने बारे में यत्र-तत्र जब-तब कुछ भले ही लिख दिया है परन्तु गद्य में विधिवत् अपने किसी निबन्ध में भी विस्तार से कुछ नहीं लिखा और प्रायः उन्हें जो भी कहना हुआ, उन्होंने कविता के माध्यम से ही कहा। परन्तु आग्रहपूर्वक पूछे जाने पर सनेही जी ने जो कुछ अपने बारे में कहा, उसे यहाँ उनके शब्दों में ही उद्धृत करना उचित है।

सनेही जी का आत्मवृत्त, उनके ही शब्दों में :—

"मेरा जन्म आधुनिक हिन्दी के निर्माण-काल में हुआ। भाषा में निखार आ रहा था, गद्य का विकास हो रहा था। पद्य की भाषा में एकरूपता का अभाव था, वह आंचलिकता के प्रभाव से ग्रस्त थी। उसके नानारूप थे। अवधी, बैसवारी, पूरबी, बिहारी, मैथिली, बुन्देलखण्डी, राजस्थानी आदि-आदि। फिर भी ब्रजभाषा का पद्य पर अखण्ड साम्राज्य था। उस समय के बड़े-बड़े कवियों का ऐसा मत था कि काव्य के लिए एकमात्र ब्रजभाषा ही उपयुक्त है। उसके माधुर्य और लोच पर कविगण लुब्ध थे। किन्तु साथ ही गद्य की भाषा के अनुरूप पद्य की भाषा के निरूपण में सुकृति सत्कवि संलग्न थे। यह नवीन परिवर्तन खड़ी बोली के नाम से जाना जाता था। इस सम्बन्ध में पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी का अथक श्रम और प्रयत्न श्लाघनीय है, जिन्होंने शुद्ध खड़ी बोली हिन्दी में कितने ही नये-नये विषयों पर गद्य-पद्य रचना के लिए योग्य व्यक्तियों को प्रेरित तथा प्रोत्साहित किया।

उस समय उर्दू ही सरकारी भाषा थी इसलिए सन् 1898 में मिडिल पास करके 1899 ई० से अध्यापन, सन् 1902 में नार्मल का प्रशिक्षण प्राप्त करने लखनऊ गया और नार्मल पास करके पुनः अध्यापन-कार्य में लग गया। अध्यापन-काल में समस्त परीक्षाएँ मैंने प्रथम श्रेणी में विशेष योग्यता के साथ पास कीं। इसी समय मैंने अपने ऊपर प्राइमरी स्कूल के प्रधानाध्यापक

मौलवी हामिद अली से फ़ारसी का अध्ययन किया तथा अपने ही ग्राम में श्री लाला गिरधारीलाल से काव्य-रीति का विधिवत् अध्ययन किया। लाला जी रामायण के प्रकाण्ड पण्डित, ब्रजभाषा के सुकवि, छन्दः शास्त्र और रीति-ग्रन्थों के उद्भट विद्वान् थे। साथ ही, हिन्दी-उर्दू के अतिरिक्त फ़ारसी के भी अच्छे ज्ञाता थे। विद्वानों के मतानुसार उत्तम काव्य-रचना के लिए पिंगल का ज्ञान अनिवार्य था। मैं भी ब्रजभाषा के आचार्य भिखारीदास 'दास' के इस मत से सर्वथा सहमत रहा हूँ कि :

शक्ति कवित्त वनाइवे की,
जेहिं जन्म नछत्र मैं दीनीं विधातें।
काव्य की रीति सिखै सुकवीन सों,
देखै-सुनै बहु लोक की बातें।
'दास' जू जामें यकत्र ये तीन,
बनै कविता मनरोचक तातें।
एक बिना न चलै रथ जैसे,
धुरन्धर-सूत कि चक्र निपातें।।

काव्य में मेरी बाल्यकाल से यही अनुरक्ति रही है। इस विषय में मैं ऐसा तन्मय रहा हूँ कि भर्तृहरि के शब्दों में :

सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम्

मैंने किसी दूसरी आकांक्षा को कभी प्रश्रय नहीं दिया। मेरी धारणा है कि :

सागर-मंथन से निकला,
अमी पी गये देव न बूँद बचा बस।
वासुकी वास पताल में है,
सुधा-धाम शशांक को चाट गये शश।
जीवनदायक कोई नहीं,
यहाँ खोज के देखिये आप दिशा दस।
है तो यही कविता रस है,
नहीं और कहाँ बसुधा में सुधारस।।

उर्दू छन्दःशास्त्र का अध्ययन नार्मल के प्रशिक्षण-काल में लखनऊ के प्रसिद्ध शायर तथा नार्मल स्कूल के प्रशिक्षक श्री मौलवी इब्राहीम हुसैन 'नाजिम' से किया। उसी समय स्व. कविरत्न श्री रूपनारायण पाण्डेय से घनिष्ठ परिचय हुआ। उसके सत्संग से संस्कृत तथा बाङ्ला-साहित्य में अभिरुचि उत्पन्न हुई, तो मैंने इन भाषाओं के भी काव्य-साहित्य का अनुशीलन किया।

इस प्रवास-काल में मुझे हिन्दी-उर्दू के अनेक साहित्यिकों के सत्संग का सुयोग प्राप्त हुआ। साथ ही, नार्मल स्कूल तथा नगर के पुस्तकालयों से विशाल हिन्दी-उर्दू साहित्य के अध्ययन का सुअवसर मिला। इसी समय से हिन्दी तथा उर्दू काव्य-रचना में प्रगति के साथ मुझे ख्याति प्राप्त हुई। मैं बराबर कवि-गोष्ठियों और मुशायरों में भाग लेता रहा।

सन् 1902 ई० में अपने काव्यगुरु श्री लाला गिरधारीलाल जी के साथ कानपुर के प्रतिष्ठित कवि स्व. श्री राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' से परिचय हुआ। उस समय मेरी रचनाएँ 'रसिक-रहस्य', 'साहित्य सरोवर' तथा 'रसिक-मित्र' में बराबर प्रकाशित होती थीं।

सन् 1913 में अमर शहीद श्री गणेशशंकर जी विद्यार्थी के आग्रह पर साप्ताहिक 'प्रताप' में मैं राष्ट्रीय कविताएँ लिखने लगा। सन् 1914 से आचार्य श्री महावीरप्रसाद जी द्विवेदी के आदेश से प्रयाग से निकलनेवाली मासिक पत्रिका 'सरस्वती' में भी लिखने लगा। इस समय मैं ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली के अतिरिक्त विशुद्ध खड़ी बोली हिन्दी और परिमार्जित उर्दू में लिखता था। साप्ताहिक 'प्रताप' में प्रकाशित होनेवाली उर्दू की प्राय: सभी रचनाएँ राजनैतिक राष्ट्रीय भावों से ओत-प्रोत होती थीं।

सरकारी नौकरी के कारण 'सनेही' के अतिरिक्त मुझे दूसरा उपनाम 'त्रिशूल' रखना पड़ा। हास्य एवं व्यंग्य रचनाएँ 'अलमस्त' या 'तरंगी' के नाम से लिखता रहा हूँ। 'त्रिशूल' नाम से लिखी जाने वाली रचनाओं ने ऐसी हलचल पैदा की कि अंग्रेज़ी हुकूमत 'त्रिशूल' की खोज में हाथ धोकर पीछे पड़ गयी, जो उसे बुरी तरह वेध रहा था।

सन् 1899 से सन् 1921 तक बाइस वर्ष अध्यापन-कार्य कर असहयोग आंदोलन के समय गाँधीजी के आह्वान पर उन्नाव टाउन स्कूल के प्रधानाध्यापक पद को छोड़कर अमर शहीद श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के अनुरोध तथा राष्ट्रीय काव्य के अनन्य प्रेमी उदारमना श्री लाला फूलचन्द जी जैन के प्रेमाग्रह से कानपुर आकर रहने लगा।

सन् 1922 ई० में श्री महामना मदनमोहन मालवीय ने मुझे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्यापन-कार्य करने के लिए बुलाया, किंतु मालवीय जी के अनुरोध का पालन न कर सका क्योंकि एक लम्बे अर्से तक अध्यापन-कार्य में निरत रहने के पश्चात् जब उसे त्याग दिया, तो फिर उसमें प्रवृत्त होने की प्रवृत्ति न हुई। सरकारी नौकरी छोड़कर अपना सारा समय राष्ट्रीय रचनाओं द्वारा जनता को स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु प्रेरित एवं प्रोत्साहित करने लगाया।

जब मैं कानपुर आया, उस समय तक कानपुर से कोई दैनिक-पत्र नहीं

निकलता था। अतः सन् 1921 में ही लाला श्री फूलचन्द जैन के विशेष साहाय्य से एक प्रेस खोलकर 'दैनिक' राष्ट्रीय पत्र 'वर्तमान' का प्रकाशन स्व. श्री पं. रमाशंकर अवस्थी के सहकार में प्रकाशित करवाया जिसमें मैं और अवस्थी जी समान भागीदार थे। साप्ताहिक 'प्रताप' निकल ही रहा था। मेरी जोशीली राष्ट्रीय कविताएँ बराबर दोनों ही पत्रों में छपती रहती थीं। उनका उद्देश्य ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध जनजागरण पैदा करना था।

सन् 1928 में आचार्य पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा बार-बार प्रेरित किये जाने पर मैंने अपना एक निजी प्रेस खोलकर काव्य संबंधी मासिक पत्र 'सुकवि' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इसके पूर्व गोरखपुर से निकलनेवाले 'कवि' का सम्पादन निरन्तर दस वर्षों तक करता रहा। इसके बन्द होने पर ही मुझे 'सुकवि' निकालना पड़ा था। 'सुकवि' भी बाइस वर्ष तक बराबर चला। इस प्रकार बत्तीस वर्ष तक कविता-पत्रों का सम्पादन करते हुए सुकृति सत्कवियों की रचनाओं के प्रकाशन के साथ नवोदित कवियों का पथ-प्रदर्शन किया तथा काव्य-क्षेत्र में राष्ट्रीय तथा सामाजिक भावनाओं का प्रसार किया। इस तरह रीतिकालीन श्रृंगारिक दलदल से निकलकर नया वातावरण उत्पन्न करने का प्रयास किया। नये-नये कवियों को नये-नये विषयों पर काव्य-रचना के लिए प्रेरित किया।

कानपुर प्रवास-काल में मेरा सम्पर्क देश में अनेक साहित्य-महारथियों, राजनैतिक तथा सामाजिक नेताओं से हुआ। सुकवि-प्रेस तो उस समय एक प्रकार से सत्कवियों की अतिथिशाला ही रहा। नगर के साहित्यिकों का तो नित्य ही अखाड़ा जमता था।

इस अवधि में मैंने बड़े-बड़े कवि-सम्मेलनों का संयोजन किया। सैकड़ों कवि-सम्मेलनों की अध्यक्षता की। इनमें अनेक अखिल भारतीय स्तर के थे। कवि-सम्मेलनों के ही सिलसिले में देश-भर का भ्रमण किया। बड़ी-बड़ी रियासतों में भी गया-आया, जिसमें टीकमगढ़ में परम साहित्य-प्रेमी स्व. सवाई महेन्द्र महाराज बीरसिंह जू देव (ओरछा-नरेश), ब्रजनगर के स्व. महाराज राणा राजेन्द्रसिंह जू देव (झालावाड़-नरेश) जो स्वयं हिन्दी-उर्दू के सत्कवि थे तथा 'रम्य-रास' नामक उत्तम खण्ड-काव्य के रचयिता स्व. महाराज चक्रधर सिंह जू देव (रायगढ़-नरेश) से विशेष सम्पर्क रहा है। देश के अन्य साहित्य-प्रेमी राजा-महाराजा, ताल्लुकेदार-ज़मींदार, सेठ-साहूकार श्रीमान भी मेरा बड़ा सत्कार करते रहे हैं।

कानपुर में मेरा अधिकांश व्यय-भार स्व. श्री लाला फूलचन्द जैन ही उठाते रहे। उनके समान ही उदारचेता उनके सुपुत्र स्व. श्री मनोहरलाल जैन भी इस विषय में अपने पिता से किसी प्रकार पीछे नहीं रहे।

सन् 1950 ई० में मैं अपनी जन्म-भूमि ग्राम हड़हा, उन्नाव चला गया, जिसका मैं तब से अब तक ग्राम-प्रधान हूँ। इस अवधि में जो बन सका, मैंने अपने ग्रामवासियों की सेवा की।

मैंने जो भी लिखा है, साधारण जनता के लिए बोल-चाल की बामुहाविरा परिमार्जित जनभाषा में लिखा है। मेरी हिन्दी-रचनाओं के पढ़ने और समझने के लिए किसी 'कोश' या पण्डित की आवश्यकता नहीं। इसी तरह उर्दू रचनाओं को समझने के लिए लुगात या किसी मौलवी की ज़रूरत नहीं। भाषा के विषय में मेरी अपनी धारणा है कि :

जिसे न सब समझें, कुछ ही समझें,
बनी हुई हो ठगों की बोली।
तुम्हीं बताओ 'सनेही' ऐसी,
जुबान हम लेके क्या करेंगे।।

एक उर्दू शायर ने कहा है :

मज़ा कहने का जब है, यक कहे और दूसरा समझे।
मगर वह क्या कहा, जो आप समझे या ख़ुदा समझे।।

मौलाना हसरत मोहानी साहब फरमाते हैं :

शेर कहते हैं उसको ऐ 'हसरत',
सुनते ही दिल में जो उतर जाये।

मेरे मित्र स्व. श्री राधेबिहारी मिश्र 'चन्द' का कहना था कि :

सूधे-सूधे सबद में, सूधी-सूधी बात।
कहत बनै जो 'चन्द' कवि बसीकरन ह्वै जात।।

इस दीर्घावधि में मैंने सुबोध हिन्दी और उर्दू में हज़ारों कविताएँ लिखीं। मेरे दस-बारह संकलन भी प्रकाशित हुए। किन्तु संचयवृत्ति के अभाव से मेरे पास किसी प्रकार का संचय नहीं है—न तो अर्थ का और न कविताओं का। संकलनों में भी मेरे पास कोई संकलन नहीं है। जो कुछ भी है, जिस जनता के लिए लिखा गया उसी में फैला है और अब उसका संकलन दुस्साध्य ही नहीं, प्रायः असम्भव है।

मेरी अधिकांश रचनाएँ 'दैनिक', 'साप्ताहिक' तथा 'मासिक' पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी हैं। मैंने हिन्दी में प्रचलित सभी प्रकार के हिन्दी या संस्कृत वृत्त लिखे हैं, पर घनाक्षरी, सवैया और छप्पय कुछ अधिक लिखे हैं। इसी प्रकार उर्दू की सभी बहरों में लिखी हैं, किन्तु मसनवी, मुसद्दस और सबसे अधिक ग़ज़लें लिखी हैं।

मैं तीन साल से बिलकुल शय्या-ग्रस्त हूँ। न उठ सकता हूँ, न बैठ सकता हूँ और न बिना सहारे के करवट ही बदल सकता हूँ। खाना-पीना भी दूसरे के ही हाथ से होता है। मन्नालाल वार्ड, कमरा नम्बर-1, उर्सला अस्पताल परेड, कानपुर ही तीन साल से मेरा स्थायी पता है, जहाँ 18 मार्च सन् 1969 में मैं दाखिल हुआ था। मेरे एकमात्र पुत्र श्री मोहन प्यारे, मँझला पौत्र चिरंजीव सुरेन्द्र मोहन तथा मेरी एकमात्र पुत्री श्रीमती कृष्णाकुमारी मिश्रा मेरी सेवा में हैं। सेवा का अधिकांश भार मेरी पुत्री ही पर है, जो अपना घर-बार छोड़कर तीन वर्ष से मेरी सेवा में तत्पर है। इसके पूर्व भी सन् 1963 में मैं जब बीमार होकर लाला लाजपतराय अस्पताल कानपुर में लगभग एक साल रहा, उस समय भी मेरी पुत्री ने ही मेरी सेवा की थी। सन् 1945 में भी मैं गम्भीर रूप से बीमार हुआ था, तब भी मेरी पुत्री ने मेरी बड़ी सेवा की थी।

सन् 1963 में तथा इस बार भी मेरी अस्पताली चिकित्सा का प्रबन्ध प्रान्तीय सरकार की ओर से किया गया। दोनों ही अवसरों पर श्री चन्द्रभानु गुप्त प्रदेश के मुख्यमंत्री रहे हैं और वे मुझे देखने अस्पताल आये हैं। स्थानीय अधिकारियों ने मेरा ध्यान रखा है। वर्तमान मुख्यमंत्री श्री कमलापति त्रिपाठी भी देख जा चुके हैं, अन्य अनेक मंत्रीगण भी आ चुके हैं। चिकित्सकों ने बड़ी लगन से चिकित्सा की है, जिससे अभी जिये जा रहा हूँ।"

ऊपर का संक्षिप्त जीवन परिचय सनेही जी ने अपनी बीमारी हालत में अस्पताल में पड़े हुए अपने अन्तिम दिनों में बोलकर लिखवा दिया था। इसमें उनके सपाट जीवन और सादे और सरल स्वभाव की झाँकी ही मिलती है। स्मृति की दुर्बलता से और बोलने पर थकावट महसूस करने के कारण वे अधिक बोल कर न लिखा सके, न उनके जीवन में अधिक उतार-चढ़ाव ही आये-गये। एक सीधे-सादे कृषक-पुत्र के रूप में उन्होंने जन्म लिया था। एक ग़रीब मेधावी विद्यार्थी के रूप में शिक्षा ग्रहण की थी और गृहस्थी चलाने के लिए मास्टरी की सरकारी नौकरी कर ली। कविता का शौक़ था, सो उसे भी शौक़िया ही अपनाया। मित्रों और प्रशंसकों की वाहवाही से उत्साहित होकर तथा जन्मभूमि बैसवाड़ा के साहित्यिक वातावरण से उत्साहित सनेही तत्कालीन रीतिकालीन काव्य-रचना में प्रवृत्त हुए। समय की पुकार और संग-साथ का असर इन्हें जिधर खींचता गया वे खिचते गये। एक चेतना-सम्पन्न स्वप्नदर्शी कवि तिलक और गाँधी की भावधारा में डूबता गया। इन्हें एक नये मार्ग की ओर मोड़ने का श्रेय उस समय के प्रभावशाली नेता और पत्रकार श्री गणेशशंकर विद्यार्थी को है, जिन्होंने सनेही जी को राष्ट्रीय समस्याओं और देश की सामाजिक चेतना को विकसित करनेवाली राष्ट्रभक्ति की भावनाओं को बढ़ानेवाली कविताएँ लिखने की प्रेरणा दी। श्री गणेशशंकर विद्यार्थी ने अपने पत्र

'प्रताप' के द्वारा देश, समाज और देश की स्वाधीनता तथा सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध लगातार वैचारिक आन्दोलन चलाकर सम्पूर्ण उत्तर भारत को एक नयी दिशा और शक्ति प्रदान की थी। इस कार्य में स्वर्गीय श्री गणेशशंकर विद्यार्थी ने अनेक नवयुवकों को और अपने समवयस्कों को तथा कुछ बड़ों को भी अपनी टीम में शामिल करके राष्ट्रीय आन्दोलन को गति प्रदान की थी। स्वर्गीय विद्यार्थी जी ने राष्ट्रीय विकास के सभी पहलुओं पर ध्यान दिया था। उनका ध्यान सिर्फ़ राज-नैतिक आजादी की ओर ही नहीं था बल्कि सामाजिक कुरीतियों, आर्थिक शोषण, सामन्तवाद, अन्यायी शासनतंत्र, किसान पर होनेवाले ज़मींदारों के अत्याचार, देशी राजाओं का मनमाना शासन और अंग्रेज़ सरकार द्वारा उन्हें अत्याचार करने देने की पूरी-पूरी छूट, इन सारी चीज़ों के विरुद्ध स्वर्गीय विद्यार्थी जी की कलम बराबर चलती रही और उनके सभी सहयोगी साथी जिस माध्यम से कार्य को करने में सफल हो सकते थे, उसी माध्यम से इस कार्य को करने में उन्हें लगाया और इसीलिए राष्ट्रीय मानस को बदलने के लिए उन्हें साप्ताहिक 'प्रताप' के प्रकाशन के साथ-साथ प्रताप पुस्तकालय के नाम से एक प्रकाशन संस्थान भी खोला, जिसमें देशी-विदेशी देशभक्तों तथा ज्ञान एवं जानने योग्य चेतना-युक्त प्रेरक साहित्य का प्रकाशन बराबर होता रहा। प्रताप प्रेस और प्रताप पुस्तकालय के नाम से प्रकाशित उनकी ऐसी पुस्तकें हैं, जिन्होंने सम्पूर्ण हिन्दी जगत को चेतना-सम्पन्न बनाने में अभूतपूर्व योगदान किया। सनेही जी को कविरूप में गणेश जी ने अपनी इसी दृष्टि को कविता के माध्यम से कार्य करने के लिए प्रेरित किया और कहना न होगा कि सनेही जी ने गणेश जी की इस आकांक्षा को पूरी तरह से अपनाया और सरकारी नौकरी में रहते हुए ही पहले अपने 'त्रिशूल' के छद्म नाम को और फिर सरकारी नौकरी छोड़कर राष्ट्र, समाज की स्वतंत्रता, सामाजिक चेतना की वृद्धि के लिए और इसके लिए नवयुवकों को प्रेरणा देने हेतु बड़ी मार्मिक, सरल एवं यथार्थवादी काव्य-रचनाएँ कीं।

आर्थिक शोषण, सामाजिक कुरीतियों तथा विश्व की उन सारी मानव-विरोधी दृष्टियों पर प्रहार करते हुए उनके उन्मूलन और मिटा डालने के लिए भारतीय युवकों से क्रान्ति का आह्वान सनेही के काव्य का मूल स्वर ही बन गया। यहाँ यह बात भी स्मरणीय है कि सनेही जी ने स्वयं अपने जीवन के सर्वोत्तम वर्ष राष्ट्रीय चेतना के विकास की यात्रा के साथ ही अपनी कवि और कविता को जन्म दिया। मैं समझता हूँ कि हिन्दी में गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' और 'त्रिशूल' यही एक नाम गिनाया जा सकता है, जिसकी कविता में बीसवीं शताब्दी का राष्ट्रीय स्वतंत्रता का आन्दोलन क्रमशः जिस रूप में शनैः-शनैः बढ़ते हुए स्वतंत्रता प्राप्त करने में सफल हुआ है, उसकी वैचारिक पृष्ठभूमि, प्रक्रिया और विविध आयाम पूरी तरह से कहीं भी स्पष्ट रूप से पहचाने जाने और अध्ययन के लिए प्रयुक्त किये जा

सकते हैं, तो सनेही 'त्रिशूल' के कविताओं में समग्र रूप से देखे जा सकते हैं।

सनेही जी ने सवैया, घनाक्षरी के अलावा भी बहुत से पुराने छन्दों का प्रयोग अपनी रचनाओं के लिए किया। जैसे रोला, कुंडलिया, हरिगीतिका, छप्पय, दोहा तथा उर्दू की बहुत सी बहरों का इस्तेमाल उन्होंने अपनी विपुल काव्य-रचना में किया। द्विवेदी युग की आख्यान कविताओं से लेकर छोटे-छोटे गीत भी रचे। हिन्दी-उर्दू के परम्परागत छन्दों के उपयोग के बावजूद सनेही का ऐतिहासिक कृतित्व घनाक्षरी-सवैया छन्द शैली में निखार तथा विषय-विस्तार एवं कविता में खड़ीबोली के सहज स्वाभाविक परिष्कार के अतिरिक्त राष्ट्रीय चेतना की उस अभिव्यक्ति के लिए ही है जिसका चित्रण उसकी कविताओं का प्रमुख अंग बना और उसके प्रभाव से हिन्दी में राष्ट्रीय काव्यधारा का अटूट स्रोत बहता रहा जिसमें राष्ट्रीय-चेतना के गम्भीर-प्रेरक साधारण समाज के जागरण का उद्बोधन का स्वर ही मुख्य था। महात्मा गाँधी के राष्ट्रीय स्वाधीनता के संघर्ष में राष्ट्र के पिछड़े हुए ग़रीब दलित किसान मज़दूर तथा उपेक्षित समाज की प्रत्येक इकाई को जो किसी भी रूप में पीड़ित-पतित और तिरस्कृत होकर जी रही थी को उठाने का उपक्रम किया जाता था।

प्रेम, श्रृंगार, भक्ति और प्राचीन छन्द-परम्परा के साथ राजनैतिक चेतना तथा गहरी सामाजिक पृष्ठभूमि, दायित्व तथा स्वत्व के लिए संघर्ष की भावना सनेही को परम्परागत संस्कार रूप में अपने जन्मस्थान हड़हा, ज़िला उन्नाव जो सुप्रसिद्ध बैसवाड़ा क्षेत्र के नाम से जाना जाता है, से मिले। कर्मभूमि कानपुर जो कभी राजनैतिक चेतना तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रमुख निर्माण केन्द्र स्थान बनकर स्वतंत्रता, संघर्ष तथा साहित्य साधना में अग्रणी स्थान रखता है, से प्राप्त हुई।

राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय आन्दोलन, राष्ट्रीय विचारधारा, राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा व्यापक मानवीय मूल्य दृष्टि का प्रभाव सनेही की कर्मस्थली कानपुर की देन है। सनेही की जीवन-दृष्टि तथा उनकी वैचारिक पृष्ठभूमि के रूप में उनकी असंख्य रचनाएँ मिलती हैं। वे भाषायी भेदभाव तथा जातीय एवं साम्प्रदायिक भावनाओं से सर्वथा मुक्त थे और यही वह मुख्य भूमि है जिस पर सनेही ने अपना जीवन व्यतीत किया तथा कृतित्व सम्पन्न किया।

जीवन-परिचय

सनेही जी का जन्म श्रावण शुक्ल 13, संवत् 1940 वि. तदनुसार **21 अगस्त, 1883 ई.** को उन्नाव ज़िले के हड़हा ग्राम में पं. अवसेरीलाल शुक्ल (पिता) एवं श्रीमती रुक्मिणी देवी (माता) के घर में हुआ। सनेही जी को अपने पिता का संरक्षण ज़्यादा दिन नहीं मिला। सनेही जी जब पाँच वर्ष के बालक ही थे तभी उनके सिर पर से पिता की छाँह उठ गयी थी। उनकी माता रुक्मिणी देवी की मृत्यु तब हुई जब सनेही जी 40 वर्ष पूरे करके पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुके थे। पिता की मृत्यु के बाद सनेही जी का लालन-पालन इनके चचेरे भाई पं. लालप्रसाद शुक्ल और उनकी धर्मपत्नी ने किया। सनेही जी अपनी विधवा माँ के तो एकमात्र सहारा थे ही इसलिए माँ ने अपने पुत्र की उन्नति हेतु अपार त्याग और परिश्रम करके देख-रेख की। यूँ तो बैसवाड़ा की भूमि ही वीर-प्रसूता कहलाती है, किन्तु सनेही जी का ग्राम हड़हा अपनी वीरता तथा विद्रोह के लिए ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। सन् 1857 के सैनिक विद्रोह के समय इनके पिता तथा चाचा ने विद्रोहियों का साथ दिया था। अन्त में विद्रोह असफल हो जाने पर अंग्रेज़ों ने जो दमन-चक्र चलाया उसकी वजह से इनके पिता, चाचा, ग्राम के बाहर छिपकर प्राणों की रक्षा करते रहे। पूर्ण शान्ति और व्यवस्था हो जाने पर इनके पिता वापस लौटे तथा खेती करके जीवन-यापन करने लगे। पं. अवसेरीलाल साहसी और बहादुर व्यक्ति थे। तलवार चलाने तथा पटेबाज़ी में वे माहिर थे। उनके दो विवाह हुए थे। पहली पत्नी का युवा अवस्था में ही देहान्त हो जाने के कारण उन्होंने दूसरा विवाह किया था। पं. अवसेरीलाल की दूसरी पत्नी श्रीमती रुक्मिणी देवी की कोख से सनेही जी का जन्म हुआ। अपने माता-पिता की वे अकेली सन्तान थे। सनेही जी शिक्षा ग्रहण करके जब टाउन स्कूल के हेड मास्टर हो गये थे तब सन् 1915 में उनके संरक्षक तथा चचेरे भाई लालप्रसाद का देहान्त हुआ। लालप्रसाद की पत्नी भी सनेही के प्रति पुत्रवत स्नेह रखती थी और उन्हीं के कारण सनेही जी गृहस्थी की झंझटों से मुक्त रह सके। सनेही जी का विवाह छोटी उम्र में ही अर्थात् तब वे 14 वर्ष के थे तभी हो गया था। उनकी पत्नी का नाम भिक्षुणी देवी था।

शिक्षा

सनेही जी की प्रारम्भिक शिक्षा हड़हा प्राइमरी स्कूल में हुई। सन् 1895 में इन्होंने हिन्दी-उर्दू की प्राइमरी परीक्षाएँ एक साथ ही उत्तीर्ण करके छात्रवृत्ति प्राप्त की। हड़हा से 14 मील दूर पुरवा क़स्बे के मिडिल स्कूल में आगे की पढ़ाई हुई। सन् 1897 में इसी स्कूल में सनेही जी ने उर्दू मिडिल परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। स्कूली शिक्षा प्राप्त करके सनेही जी गाँव आकर रहने लगे। फ़ारसी का ज्ञान सनेही जी ने अपने गाँव के प्राइमरी स्कूल के हेड मास्टर मौलवी हामिद अली से प्राप्त किया। फ़ारसी अध्ययन के साथ-साथ हिन्दी काव्य का स्वाध्याय भी चलता रहा।

सन् 1898 में जब सनेही अपने गाँव में रह रहे थे उनके शिक्षक मौलवी हामिद अली को अपने किसी सम्बन्धी की मृत्यु हो जाने के कारण उसमें शामिल होने के लिए स्कूल से छुट्टी लेनी पड़ी। सहायक अध्यापक बीमार थे। अतः मौलवी साहब ने अपने सुयोग्य तरुण शिष्य गयाप्रसाद शुक्ल को बच्चों को पढ़ाने का काम सौंपा। एक दिन सनेही जी जब बच्चों को पढ़ा रहे थे उसी समय ज़िले के डिप्टी-इन्स्पेक्टर ऑफ स्कूल मुन्शी रामसहाय तमन्ना आकस्मिक दौरा करते हुए निरीक्षण हेतु स्कूल में आये। स्कूल के हेड मास्टर और सहायक की अनुपस्थिति में सनेही जी को सफलतापूर्वक स्कूल चलाते देखकर डिप्टी साहब बहुत प्रसन्न हुए और उसी समय इनसे इनकी शिक्षा-दीक्षा की जानकारी करके प्राइमरी स्कूल के अध्यापक होने की बात की। सनेही जी तो काम की तलाश में थे ही डिप्टी साहब का प्रस्ताव तुरन्त स्वीकार कर लिया। इस प्रकार सन् 1899 में सनेही जी अपने गाँव से आठ मील दूर बरहर नामक गाँव के प्राइमरी स्कूल के अध्यापक नियुक्त हुए। इस स्कूल में एक वर्ष तक रहने के बाद सगवर के प्राइमरी स्कूल के लिए तबादला हो गया।

सन् 1902 में सनेही जी लखनऊ के नार्मल स्कूल में प्रविष्ट हुए और 1904 में नार्मल परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में पास कर ली। शिक्षण कार्य में प्रशिक्षित होकर सनेही जी पुनः सगवर स्कूल में आये। सन् 1906 में सनेही का तबादला सफ़ीपुर के मिडिल स्कूल में सेकेण्ड मास्टर के रूप में हो गया इसके बाद सनेही उन्नाव, पड़री, बांगरमऊ इत्यादि स्थानों पर अध्यापक तथा प्रधानाध्यापक पद पर कार्य करने के पश्चात् सन् 1921 में टाउन स्कूल की हेडमास्टरी से त्यागपत्र दे दिया और शिक्षण-कार्य की सरकारी नौकरी से मुक्ति पा ली। यह गाँधी जी के आंदोलन का प्रभाव था जिससे प्रेरित और प्रभावित होकर सनेही जी ने त्यागपत्र दिया था। इसी वर्ष श्रेष्ठ उपन्यासकार प्रेमचन्द ने भी त्यागपत्र दे दिया था। दोनों ही साहित्यकार अपनी योग्यता से राष्ट्रीय कार्य में लगे। असहयोग आन्दोलन के

मतवाले ये दोनों अध्यापक दूसरे पथ के पथिक बनकर निकल पड़े। इस प्रकार सनेही जी ने लगभग बाइस वर्ष सरकारी नौकरी में शिक्षक के रूप में बिताये और तत्पश्चात् स्वतंत्रता का मार्ग अपना लिया।

कविता के प्रति रुचि

सनेही जी का रुझाव कविता की ओर शुरू से ही था। अपने शैशव काल में ही जब वे लोगों को कविता पढ़ते सुनते तथा रामलीला में काव्य-पाठ होता देखते तो वे स्वयं रचना करने के लिए उल्लसित होने लगते। एक बार अपने विद्यार्थी जीवन में उन्होंने काव्य की उत्सुकता के कारण अपने अध्यापक श्री मथुराप्रसाद से प्रश्न किया कि कविता कौन कर सकता है। मथुराप्रसाद का उत्तर था कि पद्य बनाने के लिए कोई विशेष योग्यता नही चाहिए। वह सामान्य व्यक्ति भी बना सकता है। कालान्तर में मिडिल पास करके सनेही जी जब गाँव आये तब वहाँ की रामलीला में पढ़ने योग्य कुछ छन्द बनाये तथा फ़ारसी का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'गुलिस्तां' का हिन्दी में अनुवाद भी किया।

सनेही जी जब सगवर में अध्यापक हो चुके थे तो वहाँ उन्हें कविता का वातावरण मिला। यहीं उन्हें एक ऐसे मित्र का सान्निध्य मिला जो काव्य-रसिक होने के साथ एन्ट्रेन्स पास थे तथा हिन्दी, उर्दू, अंग्रेज़ी साहित्य से परिचित थे। उनके साथ सनेही जी की नित्य प्रति साहित्य चर्चा होती। ठाकुर साहब ने सनेही की प्रतिभा को परखा और उन्हें अच्छी कविताएँ लिखने को प्रेरित करते रहे। इससे उत्साहित होकर सनेही जी जब स्वरचित छन्द सुनाते, तो ठाकुर साहब उनकी खूब प्रशंसा करते। इन काव्य-रसिक मित्र का नाम था ठाकुर रामपाल सिंह। इन्हीं ठाकुर साहब के अनुरोध पर उनके घोड़े पर लिखा निम्न छन्द दृष्टव्य है—

कोऊ कहे, होइहैं यहाँ जीव नभचर कोई,
ईस सृष्टि-भेद न सनेही जू बखाने जात।
बाजी रामपाल सिंह जू को ऐसी बाजीगर,
जाके करतब करतार पै ही जाने जात॥

सन् 1902 से 1904 के बीच लखनऊ प्रवास काल में सनेही जी को उर्दू-हिन्दी साहित्य का अच्छा अध्ययन करने तथा काव्य-रुचि को परिष्कृत करने का सुयोग मिला। यहीं इन्हें अपने अध्यापक और उर्दू के अच्छे शायर मौलवी इब्राहीम हुसैन 'नाजिम' से उर्दू शायरी के लिए बहुत प्रोत्साहन मिला और हिन्दी काव्य-शास्त्र का गहन ज्ञान तथा विधिवत अध्ययन हड़हा के लाला गिरधारीलाल से प्राप्त हुआ। लाला गिरधारीलाल स्वयं अच्छे कवि तथा काव्यशास्त्र के अनोखे ज्ञाता थे। लखनऊ में नजूल विभाग के दरोगा थे। ये उक्त पद से सन् 1903 में रिटायर

होकर अपने ग्राम हड़हा में रहने लगे थे। इन्हीं लाला जी से सनेही जी को रस-छन्द, अलंकार तथा काव्य के गुण-दोष का सम्यक् अध्ययन करने का अवसर मिला था। लाला गिरधारीलाल के साथ ही कानपुर आकर उस जमाने के प्रसिद्ध कवि राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' के दर्शन सनेही जी ने किये। सनेही जी के लिए यह किसी बड़े साहित्यकार से प्रथम मिलन था। इससे पहले वे किसी बड़े कवि से नहीं मिले थे। पूर्ण जी और गिरधारीलाल जी में हुई किसी अलंकार पर गहन चर्चा सुनकर सनेही जी पूर्ण जी से बहुत प्रभावित हुए।

इस समय तक सनेही जी अपनी काव्य-प्रतिभा का प्रकाश ज़िले में विकीर्ण करने लगे थे। सन् 1904 में नार्मल करने के बाद पुन: सगवर आ जाने पर ठाकुर रामपाल सिंह की गोष्ठी पुन: जमने लगी थी।

सनेही जी की काव्य-प्रतिभा कैसी विलक्षण थी इसका एक उदाहरण देखें। सगवर स्कूल की मरम्मत के लिए एक ओवरसियर, जिसे काव्य के प्रति रुचि थी, आया। उसने सनेही जी की मेज पर उर्दू का छन्द-शास्त्र रखा देखकर पूछा—'इसे कौन पढ़ता है?' 'मैं ही पढ़ता हूँ', सनेही जी ने उत्तर दिया। सच्चाई परखने की दृष्टि से ओवरसियर ने उर्दू की कविता की एक पंक्ति सुनाकर उसका वजन बताने को कहा। सनेही जी ने सन्तोषजनक उत्तर देकर कहा, यह कोई कठिन काम नहीं है। कोई मिसरा दीजिये तो गिरह लगाऊँ। यह सुनकर ओवरसियर ने मिसरा दिया—'लब पै जिसके शुक्र है और हल्क पर तलवार है।' सनेही जी ने गिरह लगाई 'किस क़दर मुश्ताक़ तेरा तालिबे दीदार है।' ओवरसियर सुनकर प्रसन्न हो गये। यह सज्जन जहाँ जाते सनेही जी की काव्य-प्रतिभा की चर्चा करते। सनेही जी ने गुलिस्ताँ का जो हिन्दी-पद्यानुवाद किया था वह उनसे कहीं खो गया था परन्तु एक शेर उन्हें याद था जिसे वे सुनाया करते थे :

चू आहँगे रफ्त न कुनद जाने पाक,
चे बर तख्त मुर्दन चे बर रुए-खाक। (फ़ारसी)

इसका हिन्दी पद्यानुवाद :

जो यह जिय शुचि चलन को, कवहूँ ठाठे ठाट।
मरिबो तो सब एक है, क्या पृथ्वी, क्या खाट॥

आरम्भ में सनेही जी ब्रजभाषा में ही लिखते थे और रीति-परम्परा का अनुकरण करते थे।

उस युग के कुछ सुन्दर छन्द दृष्टव्य हैं साथ ही इनसे यह भी सिद्ध होता है कि तब तक सनेही जी ने अपना उपनाम 'सनेही' नहीं रखा था क्योंकि इन छन्दों में कहीं उसका उल्लेख नहीं है।

यथा—

बौरे बन बागन विहंग विचरत बौरे,
बौरी सी भ्रमर भीर, भ्रमत लखाई है।
वैरी वर मेरी घर आयो न बसन्त हू में,
बौरी कर दीन्हों मोहिं विरह कसाई है।
सीख सिखवत बौरी सखियां सयानी भई,
बौरे भये बैद कछु दीन्हीं न दवाई है।
वैरी भई मालिन चली है भरि झोरी कहा,
बौरी करिबे को औरों बौर यहाँ लाई है।।

उस ज़माने की प्रसिद्ध काव्य-पत्रिकाओं में सनेही जी की रचनाएँ रसिक-रहस्य, साहित्य-सरोवर, रसिक-मित्र इत्यादि में छपने लगी थीं। कानपुर की 'रसिक-मित्र' उस समय की प्रसिद्ध काव्य-पत्रिका थी। प्रेम-शृंगार तथा समस्या पूर्ति को सनेही जी खूब लिखने लगे थे।

इसी प्रारम्भिक युग के पचीस छन्दों को संकलित करके सनेही जी के अध्यापक मित्र ठाकुर उजागर सिंह ने 'प्रेमपचीसी' के नाम से प्रकाशित कर दिया।

प्रकाशित कृतियाँ

सनेही जी की मृत्यु के पश्चात् सन् 1984 में सनेही रचनावली के नाम से एक संग्रह अवश्य प्रकाशित हुआ है परन्तु उसमें भी उनकी सभी रचनाएँ संग्रहीत नहीं हो सकीं। सनेही जी ने हज़ारों सवैया, घनाक्षरी, छन्द, गीत एवं ग़ज़लें लिखी हैं लेकिन जिनका संग्रह अभी तक नहीं हो सका। अब तक इनकी जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं वे निम्नलिखित हैं :

(1) **प्रेमपचीसी**—यह सनेही जी की प्रथम प्रकाशित पुस्तक है जो अनुमानतः सन् 1905 के आसपास उनके एक अध्यापक मित्र तथा काव्य-रसिक ठाकुर उजागरसिंह, ग्राम मसवासी, जिला उन्नाव ने प्रकाशित करवाई थी। जैसाकि नाम से ही ज्ञात हो जाता है इसमें प्रेम-शृंगार के पच्चीस छन्द ब्रजभाषा में संगृहीत हैं। इसके दो छन्द इस पुस्तक में लिखे हैं। इसमें सनेही जी की ब्रजभाषा तथा कवित्व शक्ति एवं कला पक्ष का प्रारम्भिक परिचय हो जाता है।

(2) **गप्पाष्टक**—इसमें हास्य-व्यंग्य की साधारण मनोरंजनार्थ लिखी आठ कविताओं का संग्रह है। यह भी सनेही जी के किसी मित्र ने ही प्रकाशित करायी थी।

(3) **कुसुमांजलि**—यह बालकों के ज्ञानवर्द्धन तथा सदुपदेशमूलक कविताओं का संग्रह है। किशोर वय के बच्चों के लिए रोचक और शिक्षादायक 36 कविताएँ

इसमें संगृहीत हैं। इसका प्रकाशन प्रताप कार्यालय कानपुर से श्री शिवनारायण मिश्र ने सन् 1915 में किया था। यह बाल-साहित्य की अपने युग की बहुत प्रसिद्ध पुस्तक रही और इसके कई संस्करण हुए। पुस्तक के समर्पण में सनेही जी ने लिखा था :

बीर बालक देश की आशा-लता तुम बन रहे।
परमनिधि हो देश के तुम इस निधन के धन रहे।।
भेंट है तुमको समर्पित चित सुवासित कीजिए।
कलित 'कुसुमांजलि' कुमारो ! कर कमल में लीजिए।।

(4) **कृषक-क्रन्दन**—यह पुस्तक भी शिवनारायण मिश्र द्वारा प्रताप पुस्तकालय, कानपुर से 1916 में प्रकाशित हुई थी। किसानों पर लिखी और साप्ताहिक प्रताप में छपी सनेही की कविताओं का संग्रह है। कृषक-क्रन्दन नामक रचना अपने युग की अत्यन्त प्रसिद्ध रचना थी। यह हिन्दी जगत में सनेही का सिक्का जमानेवाली रचना थी। इसके भी कई संस्करण प्रकाशित हुए। सनेही जी ने भारत के ज़मींदारों, श्रीमानों को एक किसान के रूप में कृति भेंट करते हुए समर्पण में लिखा था :

हे भारत के ज़मींदारगण ! हे श्रीमानो।
दया-धर्म पर हृदय धर्म्म अपना पहचानो।।
बेसुध ऐसे रहो न अब यों लम्बी तानो।
कृषक तुम्हारे मूल, इन्हें निज जीवन जानो।।
एक कृषक ने किया अश्रु जल से तर्पण है।
इसीलिए यह भेंट आप ही को अर्पण है।।

(5) **त्रिशूल तरंग**—यह पुस्तक भी शिवनारायण मिश्र के द्वारा प्रताप पुस्तक माला, प्रताप कार्यालय, कानपुर से सन् 1919 में प्रकाशित हुई। इसमें हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी के भाषा रूप के साथ-साथ राजनैतिक रंग की अत्यन्त प्रसिद्ध तथा मार्मिक कविताएँ जोकि साप्ताहिक प्रताप में समय-समय पर त्रिशूल के नाम से प्रकाशित होकर सराहना एवं सम्मान प्राप्त कर चुकी थीं, संगृहीत हैं। सनेही जी का यही प्रथम संग्रह है जो आकार-प्रकार दोनों में बड़ा है। इसकी पृष्ठ संख्या 112 और मूल्य आठ आना था। गणेशशंकर विद्यार्थी ने 'दो शब्द' शीर्षक से इसकी संक्षिप्त भूमिका भी लिखी थी। इस संग्रह में भारत सन्तान, यादे-वतन, शैदा-ए-वतन, दूब की रामकहानी, जातीय गीत, स्वराज्य संगी, क़ौमी-ग़ज़ल, परतन्त्रता, किसान, किसानों का आर्तनाद, राष्ट्र-निर्माण, स्वराज्य-संदेश जैसी प्रसिद्ध कविताओं के साथ तिलक तथा गाँधी के स्वागत-सम्मान में लिखित कविताएँ संगृहीत हैं। कदाचित् राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक चेतना से परिपूर्ण तथा वीरता, त्याग और

बलिदान की भावना से ओत-प्रोत यह हिन्दी के किसी एक कवि का प्रथम संग्रह है। गणेशशंकर विद्यार्थी ने तो 'यह अपने ढंग की नयी किताब' कहकर त्रिशूल की बहुत अभ्यर्थना की थी। स्वयं सनेह जी ने त्रिशूल रूप में गन्थ समर्पण लिखा है :

दिल पहलू और दर्द दिल में रखते हैं,
मज़े दर्द के बड़े मज़े से जो चखते हैं।
जिनको भाषा, भवन, भाव, अपना भाता है,
करके दृढ संकल्प काम करना आता है।
ज्यों-ज्यों उनको धोइये, त्यों-त्यों गहरा रंग है,
धोने को उनके चरण उठी त्रिशूल-तरंग है।।

त्रिशूल-तरंग के मुख-पृष्ठ पर निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रकाशित थी :

रस-सुरसरि, यमुना-यमक, रंगी सरस्वति रंग।
लसी त्रिवेणी लहरसी, लोल त्रिशूल-तरंग।।

× × ×

कभी डूबिये दु:ख के सागर में कभी दौड़ नहाइये प्रेम की गंग में।
कभी सूक्ति के मोती मिले तो कभी भरिये भरपूर प्रभाव उमंग में।
कभी देश-दशा पर आँसू बहें कभी जोश से जाइये जीवन-जंग में।
कभी भंग में रंग है रंग में भंग है देखिये रंग त्रिशूल-तरंग में।।

इसका दूसरा संस्करण सन् 1920 में और तीसरा संस्करण सन् 1921 में हुआ।

(6) **राष्ट्रीय मन्त्र**—यह पुस्तक पं. रमाशंकर अवस्थी द्वारा सन् 1921 के जनवरी माह में प्रकाशित हुई थी। यह पुस्तक भी कलेवर की दृष्टि से छोटी है यद्यपि इसका प्रकाशन बड़ी सज-धज के साथ हुआ। इसका मुद्रण बम्बई के कर्नाटक प्रेस से हुआ था। पृष्ठ संख्या 47 और मूल्य आठ आना था। इस संग्रह में प्रकाशकीय वक्तव्य के अनुसार संगृहीत सात कविताओं में से अधिकांश वे कविताएँ हैं जिन पर बाबू बेनीमाधव खन्ना के यहाँ से प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। बेनीमाधव खन्ना के कविता-पुरस्कार में हिन्दी के बड़े-बड़े कवि अपनी रचनाएँ भेजकर प्रतिस्पर्धा में भाग लेते थे। इसी प्रतिस्पर्धा में एक बार सुप्रसिद्ध कवि पं. नाथूराम शर्मा 'शंकर' के मुक़ाबले सनेही जी की कविता को प्रथम पुरस्कार प्राप्त होने पर शंकर जी ने व्यंग्य किया था :

शंकर कविता क्या लिखे क्या पावे उपहार।
पुरस्कार तो ले गया शंकर का हथियार।।

इस संग्रह में ये सातों कविताएँ—जीत, सत्याग्रह, साम्यवाद, कर्म-क्षेत्र,

जातीयता (राष्ट्रीयता), असहयोग और स्वतन्त्रता—श्रेष्ठ तथा ऐतिहासिक महत्त्व की हैं। इस संग्रह में सनेही जी की राष्ट्रीय दृष्टि और मानवीय संवेदना का सर्वोत्तम परिचय मिलता है।

(7) **संजीवनी**—सन् 1921 में सनेही जी द्वारा सम्पादित और कई कवियों की राष्ट्रीय चेतना से पूरित 28 कविताओं का संग्रह है। सम्पादन के साथ-साथ इसका प्रकाशन भी सनेही जी ने 'सस्ती हिन्दी पुस्तकमाला' व्यवस्थापक के रूप में स्वयं किया था। यह भी बड़ी पुस्तक है। कमर्शल प्रेस, जूही, कानपुर से मुद्रित इस पुस्तक की पृष्ठ-संख्या 138 और मूल्य पाँच आना था। इसमें नौ कविताएँ सनेही जी की थीं जो अधिकांश उनके पहले संग्रहों में छप चुकी थीं। इनके अलावा रसिकेन्द्र, हरिश्चन्द्र देव, लक्ष्मीधर वाजपेयी, चक्रधर, शिवदत्त गुप्त 'कुसुम', एक राष्ट्रीय आत्मा, 'बन्धु', नारायणनन्द सरस्वती, राधावल्लभ पाण्डेय, ब्रजभूषण लाल त्रिपाठी, हरिपालसिंह क्षत्रिय, इक़बाल वर्मा 'सेहर', निश्चल 'अख़्तर', श्रीमती चन्द्रवती, अभिलाषी, रामचरित उपाध्याय, वागीश्वर और सुदर्शन आदि प्रत्येक कवि की एक-एक कविता है।

ऊपर की कविताओं में कुछ कवियों के नाम और उनके उपनाम से पृथक्-पृथक् कविताएँ छपी हैं। जैसे राधावल्लभ पाण्डेय का काव्यनाम 'बन्धु', श्री ब्रजभूषण लाल त्रिपाठी का काव्यनाम 'निश्चल' और स्वामी नारायणनन्द सरस्वती का काव्यनाम 'अख़्तर' था।

(8) **राष्ट्रीय वीणा (द्वितीय भाग)**—यह पुस्तक 'त्रिशूल' उपनाम से सम्पादित विभिन्न कवियों की कविताओं का महत्त्वपूर्ण संग्रह है। इसका प्रकाशन प्रताप पुस्तकालय, कानपुर से सन् 1922 ई० में हुआ था। मुद्रण इसका प्रताप प्रेस में न होकर कमर्शल प्रेस, जूही, कानपुर से हुआ था। पृष्ठ-संख्या 104 तथा मूल्य आठ आना था। इसमें 91 कविताएँ हैं और उस समय के सुप्रद्धि कवियों के साथ कुछ नवयुवकों की भी कविताएँ संगृहीत हैं। स्वयं सनेही के अतिरिक्त मैथिलीशरण गुप्त, रायकृष्ण दास, एक राष्ट्रीय आत्मा, सियारामशरण गुप्त, चकवस्त, परशुराम चतुर्वेदी, सत्यनारायण कविरत्न, वृन्दावनलाल वर्मा, रूपनारायण शर्मा, राधाबल्लभ पाण्डेय इत्यादि कवियों की कविताएँ हैं।

प्रकाशक शिवनारायण मिश्र ने राष्ट्रीय वीणा के प्रथम भाग के बाद दूसरे भाग के प्रकाशन की चर्चा करते हुए सम्पादक त्रिशूल के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की है।

(9) **कलामे-त्रिशूल**—इस पुस्तक में त्रिशूल उपनाम से लिखी हिन्दी उर्दू-हिन्दुस्तानी शैली की 76 कविताएँ संगृहीत हैं। इसका प्रकाशन एवं मुद्रण स्वयं गयाप्रसाद शुक्ल ने नाम से सनेही जी ने हिन्दी जाब प्रेस, कानपुर से किया था। इसका मूल्य भी आठ आना था। पुस्तक के प्रारम्भिक वक्तव्य में वर्तमान के संचालक-संपादक पं. रमाशंकर अवस्थी की भूमिका है जिसके अनुसार 'वर्तमान' आदि

समाचार-पत्रों में प्रकाशित त्रिशूल की रचनाएँ इसमें संगृहीत की गयी हैं। इसका प्रकाशन-काल अनुमानतः सन् 1930 है।

(10) **करुणा-कादम्बिनी**—यह सन् 1958 में भारती-प्रतिष्ठान, कानपुर से प्रकाशित एवं ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी से मुद्रित है। इसका मूल्य दो रुपये था। इस संग्रह में सनेही जी की मुख्यतः सरस्वती तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित बारह उत्कृष्ट कविताएँ संगृहीत हैं। प्रायः सभी कविताएँ करुण रस से सम्बन्धित होने के कारण ही इसका नाम करुणा-कादम्बिनी रखा गया है। इसकी भूमिका पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखी थी और समर्पण में सनेही ने लिखा था :

प्रखर-काल-रवि-ताप, नीर-निधि है अन्तस्तल,
वाष्प-अश्रु कण पूर्ण हुआ है गगन-दृगञ्चल।
ठण्डी साँसें शांत-पवन घन-छबि छहरायें,
शान्ति-स्वाति के बुन्द, विरहि-जन चातक पायें।
प्रेमांकुर अंकुरित हों, जहाँ सुरस सरसे वहीं,
यह करुणा-कादम्बिनी प्रेम-वारि बरसे वहीं॥

(11) **सनेही रचनावली**—सन् 1948 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा प्रकाशित। पृष्ठ-संख्या 291 मूल्य 40 रुपये है। ऊपर की पुस्तकों में प्रकाशित प्रायः सभी रचनाओं के अतिरिक्त यह स्फुट कविताओं का संग्रह है। एक स्थान पर सनेही जी की रचनाएँ अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं हैं। परन्तु यह संग्रह भी सनेही द्वारा लिखित कविताओं का चतुर्थांश से भी कम ही है।

सनेही जी की प्रकाशित कृतियों का ऊपर दिये गये परिचय से स्पष्ट है कि उनके लगभग नब्बे वर्ष की आयु में प्रायः सत्तर वर्ष सक्रिय काव्य-रचना में केवल सात पुस्तकें उनकी तथा दो पुस्तकें उनके द्वारा सम्पादित कविताओं की प्रकाशित हुई। जबकि सनेही जी के द्वारा लिखित कविताओं की संख्या दस हज़ार से अधिक ही होगी। साथ ही यह भी द्रष्टव्य है कि 'प्रेमपचीसी' और 'करुणा-कादम्बिनी' को छोड़कर शेष सभी प्रकाशित पुस्तकों में उनके काव्य-आचार्यत्व तथा काव्य-सौन्दर्य का प्रतिनिधित्व करनेवाली कविताओं का अन्य कोई संकलन नहीं प्रकाशित हुआ। सनेही जी ने हज़ारों छन्द, गीत तथा ग़ज़लों की रचना की है। घनाक्षरी और सवैया छन्द को खड़ी बोली में प्रतिष्ठित करने और लगातार नयी शैलियों के साथ संघर्ष होते रहने के बावजूद इस शिल्प को हिन्दी-कविता का अभिन्न अंग बनाये रखने का ऐतिहासिक कार्य सनेही जी के द्वारा ही हुआ। स्वयं सनेही जी तथा उनके मण्डल के प्रतिभाशाली कवि, छन्दकार हितैषी, अनूप, अभिराम, प्रणयेश, तरल, राधेश्याम पाण्डेय, सेवकेन्द्र, रसराज नागर इत्यादि अनेक नाम गिनाये जा सकते हैं। वचनेश मिश्र यद्यपि सनेही के अनुवर्ती नहीं थे परन्तु सहवर्ती के रूप में

उनका अवदान सनेही मण्डल के साथ जोड़ा जा सकता है। ऊपर उल्लिखित कवियों के कवित्व, सवैयों ने युग की पीठिका पर अमिट शिलालेख की भाँति अपने चिह्न अंकित किये हैं। छायावादी तथा छायावादोत्तर कवियों में भी कई लोगों ने यदा-कदा घनाक्षरी-सवैया छन्दों में हाथ आजमाये हैं। प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी, दिनकर, बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, अंचल इत्यादि की आँधी में भी जिनके पैर नहीं उखड़े और जिन्होंने सारे विरोधियों का अपनी प्रतिभा से उत्तर देकर खड़ी बोली हिन्दी काव्य सौन्दर्य को निखारने में पुरानी शैली को अपनाते हुए भी भाषा और भाव क्षेत्र में ऐतिहासिक योगदान किया उनमें वचनेश मिश्र, शंकर, सनेही, रूपनारायण पाण्डेय, रसाल, हितैषी, अनूप इत्यादि के नाम सर्वथा उल्लेखनीय हैं। सनेही ने इस धारा का नेतृत्व 'कवि' और 'सुकवि' के द्वारा किया। अत: आधुनिक हिन्दी काव्यधारा में इसे 'सनेही-स्कूल' की संज्ञा भी मिली। सनेही ने इस धारा का प्रचार-प्रसार कवि-सम्मेलनों के देशव्यापी आयोजनों के माध्यम से भी किया। सनेही ने उच्च-कोटि के कवियों को संघटित करके भाषा, भाव, शैली के स्तर पर महत्त्वपूर्ण कार्य किया। सनेही जी के कृतित्व पर उनके प्रमुख शिष्य कविवर अनूप शर्मा ने ठीक ही लिखा है :

भाल में अनूप के विरंचि ने दिया था काव्य,
व्यक्त किया आपने ही स्वबल अगम से।
सुकवि-समाज उठता था निज शक्ति द्वारा,
संगठन-ज्योति दे बचाया नाश-तम से॥
आपकी महान काव्य-पूर्णता विलोक कर,
हो ही नहीं सकती प्रशंसा पूर्ण हम से।
भाषा का विधान महाबीर-लेखनी ने किया,
हिन्दी का सिंगार हुआ आपकी कलम से॥

× × ×

शुद्ध हाव-भाव का विशुद्ध-पारु रंग देख,
भाषा का अशुद्ध संगठन खलने लगा।
लेखनी जमाकर उगाया काव्य-पादप जो,
शीघ्र सो रसान्वित सुफल फलने लगा।
मूल-कूल जिसके 'रसिक मित्र' पाते सुख,
छाया मध्य जिसकी 'प्रताप' पलने लगा।
भारत-सनेहियों पै बरसा सनेह बन,
देश-द्रोहियों पर त्रिशूल चलने लगा॥

सनेही-मण्डल के कवियों में सनेही जी के प्रति जो श्रद्धा भाव विद्यमान है

उसमें प्रशंसा प्रायः अतिशयोक्ति की सीमा तक पहुँची है। परन्तु अनूप शर्मा ने गुरु-भक्ति की अचल श्रद्धाभिव्यक्ति में उनका सटीक मूल्यांकन भी ऊपर के छन्दों में किया है। यहाँ यह भी स्मरण रहे कि सनेही-मण्डल से सीधे-सीधे जो लोग नहीं जुड़े थे उन पर भी सनेही-मण्डल का प्रभाव पड़ा। दिनकर ऐसे ही महाकवियों में थे। भाव-भाषा-शैली सभी में छायावाद से मुक्त दिनकर ने भी अपने महाकाव्य 'कुरुक्षेत्र' में एक सर्ग घनाक्षरी और एक सर्ग सवैया छन्द में लिखकर अपने युग की समानान्तर शैली के महत्त्व को ही स्वीकार किया है। छायावादी कविता की क्लिष्ट और कृत्रिम भाषा के विपरीत हिन्दी भाषा का शुद्ध, सरल एवं स्वाभाविक रूप की प्रतिष्ठा का काम स्वयं सनेही तथा उनके मण्डल के द्वारा सर्वाधिक हुआ, इसमें कोई सन्देह नहीं है। निराला ने जो काम छन्द के बंधनों को तोड़कर हिन्दी काव्य-क्षेत्र में किया वही काम सनेही और उनके मण्डल के प्रतिनिधि कवियों ने छन्दों में करके दिखाया। कविता में बोलचाल की, सर्वसाधारण में ग्राह्य भाषा का स्वरूप सनेही की विशेष देन है। काव्य के कलात्मक सौन्दर्य की रक्षा करते हुए, कोमलकान्त पदावली एवं कमनीय भाषा सौष्ठव की प्रतिष्ठा के साथ प्रेम, प्रकृति एवं उच्च चिन्तन की गरिमा को सवैया छन्द में हितैषी ने तथा इन गुणों के साथ घनाक्षरी छन्द में ओजस्विता को भी जोड़नेवालों में अनूप शर्मा का नाम प्रमुख है। आधुनिक शताब्दी में हिन्दी काव्य-यात्रा के जो विविध आयाम उद्भूत हुए उनसे टकराते रहने के बावजूद भाषा और भाव का सम्यक् अध्ययन तब तक पूर्ण नहीं हो सकता, जब तक छन्द-परम्परा की काव्य-धारा, जिसे 'सनेही-स्कूल' या 'सनेही-मण्डल' के नाम से जाना जाता है, का अध्ययन न किया जाय।

'वर्तमान' का प्रकाशन

सनेही जी का कानपुर आगमन स्थायी रूप से तब हुआ जब पं. रमाशंकर अवस्थी के द्वारा दैनिक 'वर्तमान' का प्रकाशन आरम्भ हुआ। कानपुर नगर के सुप्रसिद्ध देशभक्त व्यवसायी लाला फूलचन्द्र जैन ने सनेही जी की साझेदारी में अवस्थी जी को वर्तमान प्रेस लगवाया और दैनिक वर्तमान का प्रकाशन सन् 1920 की विजयदशमी से आरंभ हुआ। इसके बाद ही सनेही जी ने सरकारी नौकरी—टाउन स्कूल के हेडमास्टर के पद—से 1921 में त्यागपत्र दे दिया। यूँ लाला फूलचन्द्र जैन ने अवस्थी जी तथा सनेही जी को बराबर हिस्से का साझीदार बनाया था, परन्तु सनेही जी ने अवस्थी जी से कभी कोई हिसाब-किताब नहीं किया। जो भी अवस्थी जी ने दे दिया उसी में संतुष्ट रहे। साप्ताहिक प्रताप और दैनिक वर्तमान, इन दो पत्रों में सनेही जी की रचनाएँ बराबर प्रकाशित होती थीं। इन दोनों पत्रों में मुख्यतः त्रिशूल की राष्ट्रीय तथा सामाजिक, राजनैतिक जागृति की रचनाएँ प्रमुख रूप से छपती थीं। सरस्वती इत्यादि अन्य प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिकाओं

में सनेही जी की उच्चकोटि की साहित्यिक कविताएँ प्रकाशित होती थी। सनेही जी की कवि रूप में अब तक इतनी ख्याति हो चुकी थी कि प्रताप से हटने के बाद जब रमाशंकर अवस्थी ने दैनिक वर्तमान प्रकाशित किया तो उसके मुखपृष्ठ पर आदर्श वाक्य (मोटो) के रूप में काव्य-पंक्तियाँ सनेही जी से ही लिखायीं। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित साप्ताहिक प्रताप में 'मोटो' के तौर पर निम्न पंक्तियाँ छपती थीं :

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है,
वह नर नहीं नर पशु निरा है और मृतक समान है।

प्रताप के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित होनेवाली उपर्युक्त पंक्तियाँ मंत्र की तरह प्रसिद्ध हुईं। सनेही जी ने अपने गुरुदेव आचार्य द्विवेदी जी की इन दो पंक्तियों को 'टेक' के रूप में प्रयुक्त करके अनेक पदों की रचना की थी। अतः अनेक लोगों ने भ्रमवश 'प्रताप' की उपर्युक्त पंक्तियों को सनेही जी द्वारा रचित लिख दिया है जो सर्वथा गलत तथा तथ्यरहित है। सनेही जी ने चूँकि अनेक पत्रों के उद्देश्य वाक्य लिखे, अतः यह भ्रम और भी फैला। वर्तमान के लिए सनेही जी ने जो मोटो लिखा वह यह था :

शानदार था भूत भविष्यत भी महान है।
अगर सम्हालें आप उसे जो वर्तमान है।।

दैनिक वर्तमान में जीवन-भर सनेही जी की यह पंक्तियाँ उद्देश्य वाक्य के रूप में प्रकाशित होती रहीं।

सुकवि का प्रकाशन एवं आचार्यत्व

दैनिक वर्तमान में शुरू-शुरू में सनेही जी नित्यप्रति जाते रहे थे, परन्तु अपने मस्त स्वभाव के कारण काव्य-रचना के अतिरिक्त वर्तमान की पत्रकारिता में वे कोई रुचि नहीं लेते थे। दैनिक पत्र के झमेले में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं थी। अतः उन्होंने कविता के लिए एक मासिक पत्र का प्रकाशन भी 'सुकवि' के नाम से कानपुर से सन् 1928 में किया। यह कार्य सनेही जी के मन का था। अपने मण्डल के तथा देश के नये-पुराने कवियों की रचनाएँ इसमें छपती थीं। काव्य के माध्यम से साहित्यिक छेड़छाड़ भी इसमें हुआ करती थी। समस्या-पूर्ति, कवि-सम्मेलन तथा काव्य-चर्चा के नये-नये आयोजन इसके द्वारा होते थे तथा देश-भर में होने वाले कवि-सम्मेलनों की रिपोर्ट तथा उसमें पढ़ी जानेवाली सुन्दर कविताएँ तथा विशिष्ट समस्या-पूर्तियाँ इसमें प्रतिमास छपा करती थीं। जिस प्रकार कवि बनाने, काव्य सँवारने एवं हिन्दी गद्य और पद्य को सजाने-सँवारने में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने आचार्यत्व को सिद्ध किया उसी प्रकार खड़ी बोली हिन्दी

कविता और ब्रजभाषा की पुरानी शैली को भी माँजने तथा सँवारने का कार्य सनेही जी ने 'सुकवि' के द्वारा किया। उर्दू में उस्ताद के इस्लाह की बड़ी क़द्र होती थी। हिन्दी में इस परम्परा को अद्वितीय रूप से सनेही जी ने सम्पन्न किया। सनेही जी नये कवियों की रचनाओं में संशोधन-परिवर्तन एव परिवर्धन बड़े सहज ढंग से कर दिया करते थे। एकाध पंक्ति और कभी एकाध शब्द के संशोधन से ही कविता उत्कृष्ट और मार्मिक हो जाती थी। सनेही जी की इस्लाह की इसीलिए उनके सहयोगी तथा अनुयायी बड़ी क़द्र करते थे कि वे थोड़े-से संशोधन से ही कविता को प्राणवान, शुद्ध और मर्मस्पर्शी बना देने की कला के आचार्य थे। कविता का संशोधन कितनी सहजता के साथ कर देते थे इसके बहुत से उदाहरण हैं, परन्तु प्रसिद्ध कवि स्वर्गीय शिशुपाल सिंह 'शिशु' ने अपना एक संस्मरण इस संदर्भ में दिया है जिससे सनेही जी के आचार्यत्व की स्वाभाविकता, सहजता का परिचय मिलता है। शिशु के शब्दों में :

दुविधा में है चित्त हमारा किसको ले लें किसे न लें,
दीनबन्धु की ओर चलें या दीनबन्धु की ओर चलें।

इसका अन्तिम छन्द था :

एक ओर उपवास दिवस में माल छको ऐसा मत है,
एक ओर जीवन-भर एकादशियों का निर्जल व्रत है।
किस सुरपुर के भीतर जायें किस रौरव से चल निकलें,
दीनबन्धु की ओर चलें या दीनबन्धु की ओर चलें।।

आचार्य सनेही जी ने गद्‌गद् होकर सराहा और बोले—फिर पढ़ो। मैंने पुनः पाठ किया और वे पंक्ति-पंक्ति पर झूमने लगे। जब मैंने अन्तिम छन्द के तीसरे चरण को पढ़ना चाहा और इतना ही पढ़ पाया कि :

किस सुरपुर के भीतर जायें···

तब आप मेरे स्वर में स्वर मिलाकर गा उठे :

किस रौरव से बच निकलें।

श्रोता लोग तो मस्ती से सुन रहे थे किन्तु मैंने आचार्य जी के तुरन्त सफल संशोधन पर प्रणाम किया। 'चल निकलें' के स्थान पर 'बच निकलें' से चरण में विशेष जान आ गयी। ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं जिनमें भाव, भाषा, अर्थ, यति, गति इत्यादि दोषों का परिहार बड़ी सजग दृष्टि से सनेही जी सहज ही कर दिया करते थे।

मस्त स्वभाव

सनेही जी मस्त और फक्कड़ स्वभाव के थे। सरस हास्य-विनोद की प्रवृत्ति

उनमें भरपूर थी। बात-बात में प्रसन्नता बिखेरने और मीठी सटीक चुटकी लेने में वे चूकते न थे। प्रत्युत्पन्नमति उनमें ग़ज़ब की थी। एक बार उनके प्रिय शिष्य अभिराम शर्मा ने उन्हें बताया कि चन्दनलाल नामक सज्जन ने उनसे कुछ काम कराया था उसका पैसा बार-बार माँगने पर भी वे नहीं दे रहे हैं और टालमटोल करते रहते हैं। वे लाला चन्दनलाल के बँगले से आ रहे हैं और इस बार भी वे विफल-मनोरथ लौटे हैं। सनेही जी ने तुरन्त एक छन्द, जिसकी अन्तिम पंक्ति है :

चाहे जितौ रगरौ परभू, पर चन्दन लाल सुगंध न दैहैं।

चमत्कारयुक्त सटीक सुन्दर युक्ति को सुनते ही सभी ने हँसी का एक ठहाका लगाया। अभिराम शर्मा का नाम है प्रभुदयाल। सो परभू सम्बोधन करके सनेही ने चन्दनलाल को लाल चन्दन की उपमा देकर कहा था कि चाहे जितना भी रगड़ा जाय पर लाल चन्दन सुगन्ध नहीं देता।

एक बार अपने किसी शिष्य के पुत्र के विवाह में सनेही जी को एक बारात में जाना पड़ा। बारात का ख़ूब स्वागत-सत्कार हुआ। गुरु होने के नाते सनेही जी का विशेष रूप से तथा उनके मंडल की ख़ासी चहल-पहल रही। विदा के अवसर पर लोगों का आग्रह हुआ कि सनेही जी कुछ ज़रूर कहें। सनेही जी ने तुरन्त निम्न-लिखित पंक्तियाँ कहीं :

सम्बन्धी सज्जन मिले ख़ुशदिल और हसीन भी,
लाला मिट्ठनलाल जी मीठे भी, नमकीन भी।

बेटी की विदा के विह्वल क्षणों में भी सनेही जी के विनोद से सभी प्रसन्नता से मुस्कराने लगे। बात यह थी कि लड़की के पिता अर्थात् समधी का नाम लाला मिट्ठनलाल था और उनकी हलवाई की दुकान थी।

सनेही जी की साधारण बातचीत में भी व्यंग्य-विनोद की प्रचुर मात्रा रहती थी। एक बार वे स्वतंत्रता-दिवस पर आयोजित कवि-सम्मेलन में आमंत्रित होकर दिल्ली गये। उनके शिष्य (स्व.) असीम दीक्षित उनके साथ थे। कवि-सम्मेलन समाप्त होने के बाद दूसरे दिन राष्ट्रपति की ओर से राष्ट्रपति भवन में सभी आमन्त्रित थे परन्तु कवि-सम्मेलन में भाग लेने का मार्ग-व्यय तथा पुरस्कार की राशि प्राप्त होने के बाद सनेही जी ने अपने शिष्य से कहा कि इस समय कानपुर के लिए जो गाड़ी मिले उससे चलो, यहाँ रुकने का कोई काम नहीं, क्योंकि अपना राष्ट्रपति लाठी मुहाल में इन्तज़ार कर रहा होगा। लाठी मुहाल कानपुर में सनेही जी के प्रमुख भक्त और शिष्य स्व. लाला किशोरचन्द्र कपूर रहते थे जो सनेही जी की सेवा में सदैव तत्पर रहते थे। कानपुर में सनेही जी का कवि समूह 'सुकवि-मंडल' के नाम से विख्यात था और उनसे स्पर्धा रखनेवाला दल 'साहित्य-मंडल'

के नाम से संगठित था। सुकवि-मंडल का नेतृत्व सनेही जी करते थे और साहित्य-मंडल का बिहारी तथा केशव जी। दोनों ही दलों में परस्पर बड़ी तीखी नोक-झोंक भी यदा-कदा हो जाती थी। दोनों दलों के प्रतिभाशाली कवि भंड़ौवा व्यंग्य-काव्य लिखकर परस्पर व्यंग्य-विनोद भी किया करते थे। सनेही-मंडल के प्रमुख कवि श्री हितैषी जी ने ग़ज़ब के भंड़ौए लिखे हैं जिनमें स्पर्धा करने वाले कवियों पर तीखे और गहरे व्यंग्य किये गये हैं। सनेही जी से स्पर्धा करनेवाले कवि तथा साहित्य-मंडल के अध्यक्ष श्यामबिहारी शर्मा बिहारी के लिए हितैषी जी ने एक छन्द लिखा जो विशिष्ट व्यंग्य और सरस विनोद के साथ काव्य की दृष्टि से भी बहुत सुन्दर निदर्शन है। सनेही के शिष्य हितैषी जी बड़े प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे और ज़बर्दस्त चोट करने वाले भी थे। सनेही जी से प्रतिस्पर्धा करनेवालों पर उन्होंने बड़े तीखे व्यंग्य-काव्य लिखे हैं। उदाहरण के लिए उनका एक सरस व्यंग्य छन्द तत्कालीन विनोदी रसिकों के कंठ से प्रायः सुना जा सकता था। कवि बिहारी पर लिखा हितैषी जी का छन्द उद्धृत है। इसमें बिहारी कवि की वेश-भूषा तथा अपने मंडल के प्रमुख कवि तथा अनुयायी श्री हरि जू की प्रशंसावृत्ति पर व्यंग्य किया गया है। हितैषी जी का वह छन्द है :

ओढ़े रामनामी ठाढ़ो तिलक लगाये भाल,
    डारे कंठ माला ये बनाये मंजु छवि हैं।
सीताराम बोल, बोल सीताराम भाखें बैन,
    बुद्धि में वृहस्पति हैं ज्ञान में ये रवि हैं।।
काहे लैं कर में पिसान तू पुकारै इन्हें,
    सुनि लैहैं जो पै तो ये दाबे से न दबि हैं।
धाम-धाम गावत फिरत हरिजू के गुन,
    भिक्षुक नहीं हैं ये बिहारी सम कवि हैं।।

इन्हीं कविवर श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी' का कानपुर में सार्वजनिक अभिनन्दन का आयोजन किया गया था। समारोह की अध्यक्षता की थी सुप्रसिद्ध विद्वान डॉ. पं. मुन्शीराम शर्मा जी ने और स्वागताध्यक्ष थे कानपुर नगर के सुप्रसिद्ध वयोवृद्ध कांग्रेस नेता पं. रघुवरदयाल भट्ट। इस समारोह की चर्चा सनेही जी के सामने भी हुई। उन्होंने मुस्कराते हुए टिप्पणी की, वह तो त्रिभट्ट सम्मेलन था। फिर त्रिभट्ट सम्मेलन का खुलासा करते हुए कहा, जिसका अभिनन्दन हुआ, वह बिहारी राम भट्ट, आयोजन स्वागताध्यक्ष रघुबरदयाल भट्ट और जिन्होंने अध्यक्षता की वे मुंशीराम शर्मा भट्ट। हुआ न त्रिभट्ट सम्मेलन! उपस्थित मंडली लोट-पोट हो गयी।

सनेही जी के स्वभाव में व्यंग्य की कटुता कम और विनोद की मृदुता अधिक

रहती थी। चुहल, छेड़-छाड़, मनोरंजक चुटकुले, फ़ब्तियों का विषय, भाषा, छन्द, अलंकार, इत्यादि की स्पर्धा में कवित्व शक्ति को चुनौती देने और स्वीकार करने में उन्हें हिचक नहीं होती थी। बहुत-सी समस्या-पूर्तियाँ उनकी इसी प्रवृत्ति की देन हैं। यदा-कदा व्यंग्य-विनोद में अप्रिय घटना भी घट जाती, परन्तु सनेही जी स्वजनों से वैर-विरोध की गाँठ बाँधकर नहीं रखते थे। इसी प्रकार के एक प्रसंग की चर्चा पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी ने मनोरंजक संस्मरण 'लड़ाई की जड़ हँसी' शीर्षक से (पृष्ठ 180-181) में की है। उन्हीं के शब्दों में देखें :

"कानपुर में कांग्रेस अधिवेशन हुआ। श्रीमती सरोजिनी नायडू उसकी अध्यक्ष थीं। (स्व.) जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' श्रीमती नायडू की राजनीति से असंतुष्ट थे। उस अवसर पर उन्होंने श्रीमती नायडू को लक्ष्य करके, कुछ व्यंग्यपूर्ण छन्द लिखे। उनमें व्यंग्य तो था ही कुछ अवमानना भी थी। जैसे एक छन्द की अंतिम पंक्ति थी—'नाचती नेहरू के रुख पै ये सरोजनी आज बनी प्रसिडेन्टा।' इन छन्दों का प्रचार भी हुआ। इससे कानपुर के कांग्रेसी नेता हितैषी जी से क्षुब्ध हो गये। हितैषी जी के काव्यगुरु और मित्र सनेही जी भी इन छन्दों के कारण उनसे असन्तुष्ट हो गये थे। किन्तु हितैषी जी से विवाद करने का किसी को साहस नहीं होता था। कांग्रेस अधिवेशन के कुछ दिनों बाद ही होली आयी। संयोग से उस अवसर पर वहाँ (स्व.) पद्मधर अवस्थी आये। वे बड़े प्रतिभाशाली युवक थे और उनमें आशु कविता की अद्भुत शक्ति थी। होली पर एक समारोह हुआ जिसमें कितने ही साहित्य-प्रेमी, कांग्रेसी नेता, स्थानीय कवि आदि सम्मिलित थे। उसमें सनेही जी, हितैषी जी और पद्मधर जी भी उपस्थित थे। इस अवसर पर लोगों ने पद्मधर जी को बाढ़ पर रख दिया और उनसे हितैषी जी पर व्यंग्यात्मक छन्द कहलाये, जिनमें कितनी ही कटूक्तियाँ भी थीं और उनके निजी जीवन पर भी करारे प्रहार थे। आलोचना अत्यन्त तीखी तो थी ही, उसमें कहीं-कहीं शिष्टाचार का भी अतिक्रमण हो गया था। कानपुर के प्रमुख कांग्रेसी नेता और सनेही जी भी पद्मधर जी को खुला प्रोत्साहन दे रहे थे। इस घटना से हितैषी जी इतने क्रुद्ध हो गये कि उन्होंने इन सबसे मिलना और बोलना भी बन्द कर दिया।

जब यह बोलचाल एक वर्ष तक बन्द रही तब सनेही जी को जिन्हें हितैषी जी से बड़ा सनेह था, हितैषी जी की अप्रसन्नता खलने लगी। उन्होंने शायद अनुभव किया कि हितैषी जी के साथ कुछ ज्यादती हो गयी है अतएव अगली होली पर उन्होंने हितैषी जी को मनाने के लिए एक छन्द लिखकर दैनिक 'वर्तमान' में छपवाया। वह छन्द यह था :

होली की उमंग अंग-अंग में समाई, और,
भंग की तरंग रंग लायी थी ठिठोली का।
भंग के प्रकाश का निराला कुछ ढंग हुआ,
संग संग सुख मिलता था व्यंग्य बोली का।।
मेरे हृदयासन पै आप हैं विराजमान,
कोमल शरीर हुआ होगा लक्ष्य रोली का।
आपकी क्षमा के लिए सानुराग अर्पित है,
स्वीकृत हो मित्रवर प्रेमपत्र होली का।।

किन्तु पद्मधर जी ने अपनी कविता में कुछ ऐसी बातें कह दी थीं जो हितैषी जी को छू गयी थीं। उनका क्रोध काव्यगुरु सनेही जी की इस क्षमा-याचना से भी उस समय शांत नहीं हुआ। उन्होंने सनेही जी के छन्द का उत्तर इस छन्द से दिया :

उठेगी उमंग कैसे जब एक एक पर,
घृणित प्रहार करते हैं व्यंग्य बोली में।
दु:ख मिलता है किसी को तो किसी को सुख,
अपमान अपनों का करके ठिठोली में।।
भंग ही ने रंग-भंग करके बिठाल दिया,
सभ्य शिरोमणियों को भंगियों की टोली में।
कैसा अनुराग, लगवाते मित्रता में दाग,
भाग रे हितैषी लगे आग ऐसी होली में।।

हितैषी जी का क्रोध शांत होने में कई वर्ष लगे।"

ऊपर के उदाहरण से सनेही जी के गुण-ग्राहक, स्नेह और सहज उदाहरण का ही परिचय मिलता है। गर्वीलापन, ठसक, तेवर और तराश उनके व्यवहार में भरपूर थी। किन्हीं परिस्थितियों में यदा-कदा क्रोध और कठोर मुद्राएँ भी उनमें देखी गयीं परन्तु सदा और सर्वत्र प्रसन्नता का वातावरण बनाये रखना ही उनका स्वभाव था।

वे कितने मस्त स्वभाव के थे यह उनके द्वारा वृद्धावस्था में लिखे निम्नलिखित दो छन्दों में देखा जा सकता है। जब वे 75 वर्ष के हुए तो उन्होंने अपने अभिनन्दन के अवसर पर लिखा छन्द सुनाया, वह यह था :

विश्व में विचारों के विचरता रहा विवश,
बस गया वहीं पै रहा न मन बसका।
कंठों में विराजा रसिकों के फूल-माल हो के,
कुटिल कलेजों में त्रिशूल होके कसका।।

धाराधर विपदा के बरसे सहस्र धार,
तो भी मेरा धीरज-धराधर न धसका।
चसका वही है नव रसका सनेही अभी,
टसका नहीं मैं हूँ पछत्तर बरस का।।

और जब सात वर्ष बाद वे 82 वर्ष के हुए, तब सनेही जी की वर्षगाँठ कानपुर में बड़े धूमधाम से मनायी गयी। इस अवसर पर वे बीमार थे और अस्पताल में भरती थे। वहीं से अशक्त होते हुए भी उन्होंने निम्नलिखित छन्द लिखकर समारोह में सुनाया था :

मित्र-मित्र ही है, नहीं कोई भी अमित्र मेरा,
मित्रता जहाँ हो, वहाँ काम क्या उदासी का।
ताक-ताक कर ऐसे व्यंग्य बाण छोड़े मैंने,
फोड़ दिया भंडा झूठी पालिसी सियासी का।।
मेरा छबिधाम बसा मेरे मन-मन्दिर में,
बन्दा हुआ बन्दा कभी कावा का न काशी का।
रसे रसे रस में सनेही मैं सरस हुआ,
बरस रहा हूँ रस बरस बयासी का।।

ऊपर के इस छन्द में उनकी धर्मनिरपेक्ष दृष्टि का जितना सुन्दर निदर्शन हुआ है वस्तुतः वही उनके जीवन का दर्शन था और उनकी जीवन यात्रा में देश-भक्ति, राष्ट्रीयता और विश्व-बन्धुत्व के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु को मान्यता नहीं मिली। उनका नवासी वर्ष की उम्र में कानपुर के उर्सला अस्पताल में 20 मई सन् 1972 को निधन हो गया।

साहित्यिक अवदान

सनेही जी ने साहित्य-क्षेत्र में जब कवि रूप में पदार्पण किया था, तो वह युग हिन्दी के लिए ही नहीं हिन्दुस्तान के लिए भी भीषण कठिनाइयों और समस्याओं का काल था। पराधीनता के विकराल मुख में भारतीय जनता कराहते हुए मुक्ति के लिए छटपटा रही थी। समाज के अंग-अंग गतिहीनता और शैथिल्य के शिकार थे, किन्तु साथ ही जातीय चेतना कुनमुना रही थी। देश प्रत्यक्ष रूप से दैन्य से ग्रस्त था और व्यक्ति परोक्ष रूप से ज्वालामुखी की तरह भीतर-ही-भीतर सुलग रहा था। विदेशी शासन और उसके अलमबरदारों के अत्याचार से संत्रस्त सर्वसाधारण की आँखों में आँसू होते हुए भी, उसको मिटाने का हौसला जगने लगा था। सदियों से भारत की आत्मा करवट बदलने की तैयारी कर रही थी। राजनैतिक स्वाधीनता, आर्थिक और सामाजिक समता तथा सांस्कृतिक गतिमयता के लिए देश में उथल-पुथल मचने लगी थी। राजनैतिक चेतना के उदय और स्वाधीनता संग्राम के लिए गूँजनेवाली तिलक और गाँधी की वाणी को कविता के माध्यम से सर्वसाधारण तक पहुँचाने का काम जिन कवियों ने अपना धर्म बनाया था, उनमें सनेही जी का नाम सर्वोपरि है। आर्थिक एवं सामाजिक समता के लिए तिलक, मार्क्स और गाँधी जैसे मनीषियों के स्वरों को जिन कवियों ने अपनी काव्य वीणा पर झंकृत किया, उनमें सनेही जी का प्रमुख स्थान है। दयानन्द, विवेकानन्द, बंकिमचन्द्र तथा रवीन्द्रनाथ प्रभृति सांस्कृतिक चेतना के प्रहरियों की मानस छवियों को सनेही जी ने अपनी रचनाओं में अंकित किया है।

साहित्य की दशा भी तत्कालीन समाज की दुरव्यवस्था से भिन्न नहीं थी। हिन्दी भाषा का परिनिष्ठित स्वरूप बन रहा था। ब्रजभाषा का माधुर्य काव्य की कोमल कल्पनाओं को सम्हालने में सक्षम था। परन्तु सामाजिक विस्फोट की धमक सम्हालने की शक्ति उसमें नहीं थी। दुनिया के बदलते हुए रूप तथा बढ़ते हुए वेग को साहित्य के नये मार्ग की आवश्यकता थी। विषय, भाषा, शिल्प, प्रतीकादि सभी में नवोन्मेष की माँग अनिवार्य हो गयी थी। हिन्दी के गद्य-पद्य की भाषा एक बनाने, हिन्दी भाषा का परिष्कार करके उसे व्याकरण-सम्मत बनाने तथा काव्य-क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने का आंदोलन आचार्य द्विवेदी जी ने छेड़ रखा था। हिन्दी

और उर्दू की समस्या, हिन्दू और मुसलमान की तरह ही विकास और निर्माण के क्षेत्र में बाधक बनकर खड़ी थी। देश और समाज की जो भी समस्याएँ और दायित्व थे, उन सभी की ओर सनेही जी ने अपनी दृष्टि उठायी। अपने दायित्व के प्रति वे सदैव जागरूक रहे। एक स्वस्थ और उदात्त दृष्टिकोण उनकी रचनाओं में स्पष्ट उभरता दिखायी पड़ता है। वे समस्याओं के जाल में उलझने के बजाए साफ़ और सीधा मार्ग ग्रहण करके चलते रहने के पक्षपाती थे। इसीलिए वे साफ़गोई अर्थात् स्पष्टवादिता के लिए प्रसिद्ध हैं। सरकारी रीति-नीति, हिन्दू-मुसलमान तथा हिन्दी-उर्दू का प्रश्न उठाने वालों के प्रति उनकी यह उक्ति कितनी सटीक है :

अब वतन देखूँ कि सरकार की अबरू देखूँ,
हिन्द को देखूँ कि अब मुसलमाँ हिन्दू देखूँ।
तहकी समझेंगे सखुन फहम जवाँ हो कोई,
काम अपना करूँ या हिन्दी ओ उर्दू देखूँ ।।

सनेही जी उर्दू तथा फ़ारसी के पंडित थे। उनका दोनों के साहित्य का अनुशीलन बहुत गहरा था। उर्दू को जब एक अलग भाषा के रूप में मान्यता देने के लिए हिन्दी के विरुद्ध व्यूह-रचना की गयी तो अधिकारी प्रवक्ता के रूप में उन्होंने घोषणा की :

नहीं है तत्त्व कोई और इस उर्दू के ढाँचे में,
ढली है देखिये यह पूर्णतः हिन्दी के साँचे में।

कहने की आवश्यकता नहीं कि आधी शताब्दी बीतने के बाद भी सनेही के उपर्युक्त कथन की सत्यता सिद्ध है। भाषा की दृष्टि से उर्दू हिन्दी की ही एक शैली है, हिन्दी से अलग उसके अस्तित्व को मानना कठिन है। सनेही जी को एक ओर हिन्दी भाषा की क्षमता को सिद्ध तथा काव्य-सौंदर्य एवं विषय-वैविध्य की रक्षा करनी थी तो दूसरी ओर देश और समाज के जीवन में जो नयी चिंतनाएँ तथा घटनाएँ स्पंदित एवं घटित हो रही थीं, उन्हें काव्य के द्वारा प्रचारित-प्रसारित करना था।

इन दायित्वों को सनेही जी ने सदैव निभाया। प्रारम्भिक आवश्यकताओं की पूर्ति उन्होंने बड़े मनोयोग से की। कहना चाहिए कि गहरी नींव को पाटने में ही उनका बहुत-सा समय लग गया। उद्देश्यपूर्ति के लिए स्वयं तथा देशव्यापी शिष्य-मंडल तैयार करके कवि सम्मेलनों तथा सुकवि द्वारा राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार-प्रसार करने में उन्होंने महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

कुछ लोगों का मत है कि कला का सामयिक होना श्रेष्ठता की दृष्टि से दुर्बल हो जाना है। सामान्यता कला का गुण नहीं है और चूँकि कविता भी कला है, अतः उसमें भी सामान्य का स्थान नहीं है। यह ठीक है कि सामान्यता कला को कालातीत

नहीं बनने देती, परन्तु काल-निरपेक्ष सृजन भी काल-सापेक्ष ही होता है। सृजन-कार्य में सामान्यता और विशिष्टता दोनों ही आवश्यक हैं। कला का क्षेत्र ही एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें सामान्य को विशेष बनाकर आनन्द की प्राप्ति होती है। मर्त्य को अमरत्व और असुन्दर को सौंदर्य प्रदान करने की क्रिया ही उसका कर्म है। यह भी सही है कि विशिष्टता तथा उच्च धरातल पर स्थित कवि वंदनीय हुआ करता है, परन्तु समय की पुकार को जो लोग पूरा करते हैं, उनका महत्त्व भी कम नहीं होता। वे इतिहास की आवश्यकता को पूरा करते हैं। काल की चाल, ऐसे कृतिकारों के कृतित्व से देखी-परखी जाती है।

सनेही जी ने जहाँ सामयिक दायित्व का निर्वाह किया, वहाँ साहित्य के स्थायी मूल्योंवाली रचनाओं से भी साहित्य का भंडार भरा है। समय की पुकार को उन्होंने अनसुना नहीं किया और न समाज से मुँह मोड़कर केवल कल्पना लोक में विचरण करना पसंद किया। कला से अधिक इतिहास की आवश्यकता की पूर्ति उन्होंने की। सनेही जी का त्रिशूल रूप उनके सामयिक सत्य का उद्घोषक है।

भाषा की दृष्टि से सनेही हिन्दी के और 'त्रिशूल' उर्दू या हिन्दुस्तानी के कवि कहे जाते हैं। विषय की दृष्टि से सनेही व्यक्ति के प्रतिनिधि हैं तो 'त्रिशूल' समाज के। सनेही की रचनाएँ श्रेष्ठ कलाकृतियाँ हैं तो 'त्रिशूल' की तत्कालीन देश और समाज का दर्पण। काव्य-शास्त्र के साथ कला-पक्ष का सम्यक् विकास सनेही की कविताओं में हुआ और तत्कालीन जीवन की विफलता एवं हाहाकार का सफल चित्रण त्रिशूल ने किया। काव्य की स्थायी मान्यताएँ सनेही में मिलेंगी और जन-नेतृत्व की सामयिक भावनाएँ त्रिशूल में। त्रिशूल की कविताएँ राष्ट्रीय स्वाधीनता, सामाजिक जीवन, विद्रोह तथा जन-जागरण की जीवंत युगीन तस्वीरें हैं। राष्ट्रीय स्वातंत्र्य के त्रिशूल वैताली हैं। बिना संकोच यह कहा जा सकता है कि गत अर्ध-शताब्दी के हिन्दुस्तान की हलचल त्रिशूल की रचनाओं में स्पष्टतः देखी जा सकती है। सम्भवतः हिन्दी का अन्य कोई कवि ऐसा नहीं है जिसकी रचनाओं में राष्ट्रीय स्वाधीनता के इतने सहज और समग्र दृश्य अंकित हुए हों।

सनेही जी के प्रेम में मानवता की उपेक्षा नहीं होती। वे मानव मात्र के कल्याण की कामना रखते हैं। गाँधी की रामराज्य की कल्पना उन्हें प्रिय है। न वे मार्क्स-वाद के प्रचारक हैं न व्यक्तिवाद के, वे अलमस्त फक्कड़ कवि रहे हैं, इसलिए उन्हें व्यक्तिवादी कहना ग़लत होगा और ग़रीबों, मज़दूरों, किसानों के प्रति उनकी ममता गहरी है, इसलिए उन्हें साम्यवादी सिद्ध करना भ्रांतिमूलक होगा। सच तो यह है कि वे शुद्ध भारतीय राष्ट्रवादी कवि हैं। देश-प्रेम और मानव-प्रेम उनके काव्य में सर्वाधिक महत्त्व का पहलू है। इस कार्य में देशी-विदेशी सभी महापुरुषों तथा उनके विचारों के प्रति सनेही जी का उदात्त दृष्टिकोण रहा है।

सनेही जी का यह कार्य भी कम महत्त्व का नहीं है कि उन्होंने खड़ी बोली में,

ब्रजभाषा के समान, घनाक्षरी, सवैया आदि छन्दों में कोमल एवं प्रभावपूर्ण काव्य-रचना करके दिखायी। सनेही तथा उनके शिष्यों के छंदों को देख-पढ़कर यह भली-भाँति जाना जा सकता है कि घनाक्षरी तथा सवैया छन्दों में खड़ी बोली कविता वैसी ही मार्मिक और प्रभावशाली है, जैसी ब्रजभाषा में। इन छन्दों को खड़ी बोली में उत्कृष्टता तक पहुँचानेवाले सनेही जी के तथा उनके मंडल के कवि मुख्यत: 'हितैषी' तथा 'अनूप' अविस्मरणीय हैं।

समस्या पूर्ति के क्षेत्र में भी असीमित भावराशि का प्रणयन और प्रकाशन करने तथा कवि सम्मेलनों के द्वारा हिन्दी भाषा तथा साहित्य के द्वारा जनरुचि को परिष्कृत करने का कार्य भी सनेही जी का महत्त्वपूर्ण प्रदेय है।

सरलता और सादगी में भी काव्य-चमत्कार सुरक्षित रह सकता है। इस प्रकार के युगीन प्रश्नों का सनेही जी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से उत्तर दिया है। लक्षण ग्रंथों के अनुसार वियोग की दशाएँ, रसात्मकता, आलंकारिक प्रयोग सनेही जी के छन्दों में सफलता के साथ चित्रित हुए हैं। पुराने छन्दों में नव-नव भावराशि का सम्प्रेषण, प्राचीन काव्यधारा में नवीनता के विभिन्न प्रयोग सनेही तथा उनके मंडल की विशेषता रही है। प्रयोगों में उर्दू बहरों के अतिरिक्त संस्कृत वर्णवृत्तों में भी सनेही जी ने सर्वोत्तम रचनाएँ की हैं। यथा, कौशल्या-विलाप रचना की ये पंक्तियाँ :

तन-मन जिसपे मैं वारती थी सदैव,
वह गहन वनों में जायेगा हाय दैव।
सरसिज तनु हा हा कंटकों में खिलेगा,
घृत-मधु-पय-पाला स्वेद से ही सिंचेगा।

यह हृदय विदारक दृश्य मैं देखती हूँ,
पवि हृदय बनी हूँ आज भी जी रही हूँ।
शठ, पतित, अभागे प्राण जाते नहीं क्यों,
रह कर तन में ये जलाते नहीं क्यों।।

× × ×

दिनकर कमलों को स्वच्छ देता सुहास,
शशि कुमुदगणों को रम्य देता विकास।
जलद बरसते हैं भूमि में अम्बुधारा,
सुजन बिन कहे ही साधते कार्य सारा।।

द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मक पद्धति पर सनेही जी द्वारा रची गयी श्रेष्ठ रचनाओं का सौंदर्य द्रष्टव्य है। चित्रात्मकता का एक उदाहरण 'शैव्या-संताप' से आगे प्रस्तुत किया गया है।

उदासी घोर निशि में छा रही थी,
पवन भी काँपती थर्रा रही थी।
विकल थी जाह्नवी की वारि धारा,
पटककर सिर गिराती थी कगारा ।।
घटा घनघोर नभ पर घिर रही थी,
बिलखती चंचला भी फिर रही थी।
न थे वे बूँद आँसू गिर रहे थे,
कलेजे बादलों के चिर रहे थे ।।

× × ×

कहीं धक-धक चिताएँ जल रही थीं,
विकट ज्वाला उगल प्रतिपल रही थी।
कहीं शव अधजला कोई पड़ा था,
निठुरता काल की दिखला रहा था ।।

आधुनिक हिन्दी कविता ने आचार्य द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता से लेकर प्रतीकात्मक छायावाद तक की जो मंज़िल पूरी कर उसके बीच जितने प्रयोग हुए उनसे अलग परम्परागत छन्दों में ही उन प्रयोगों का समावेश करके सनेही जी ने जिस काव्यधारा को सूखने नहीं दिया, उस विशिष्टता को 'सनेही-स्कूल' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। यों छायावादी प्रतीक-विधान और सांकेतिकता की छवियों का समावेश सनेही जी के छन्दों में भी देखा जा सकता है।

आज़ाद हिन्द फ़ौज पर लिखी रचना की कुछ पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं :

थर्राया आसमान जो भौंहों में कल पड़े,
उमड़ा वो जोश-जोश के दरिया उबल पड़े।
कांधे पे गन हथेली पे सर लेके चल पड़े,
जयहिन्द कह के शेरे दिलावर निकल पड़े।
निकले जिधर से साफ़ ही मैदान कर दिया,
दमभर में सारे खेत को खलिहान कर दिया ।।

उपर्युक्त पंक्तियों में 'भौंहों में बल पड़ना', 'हथेली में सिर ले के चलना', 'मैदान साफ़ करना', 'खेत का खलिहान कर देना' जैसे लोक-विश्रुत मुहावरों में सटीक प्रयोग ने कविता को जनता की ज़ुबान दे दी है। सनेही जी के काव्याभि-व्यक्ति की स्पष्टता और भाषा की स्वच्छता ने जनता के जीवन में रस घोल दिया है। जिन थोड़े-से हिन्दी कवियों की रचनाएँ देश की आम जनता में लोकप्रिय हुईं, उनमें सनेही प्रमुख स्थान रखते हैं। सनेही जी निश्चय ही उन कवियों में हैं जो अपनी कविता के माध्यम से जनता के दिल-दिमाग़ पर सीधा असर डाल सकने में समर्थ

हुए। सनेही जी खड़ी बोली की स्वच्छता तथा बामुहावरा भाषा लिखने के लिए अपने समकालीन कवियों में अद्वितीय हैं। लोक-प्रचलित कहावतों, कथाओं, घटनाओं और प्रसंगों से उनकी रचनाएँ अलंकृत हैं।

सनेही जी की यह सबसे बड़ी विशेषता रही है कि वे सदैव जनता के कवि रहे। जन-भावनाओं को समादर उन्होंने साहित्य के प्रत्येक स्तर पर किया। यद्यपि सनेही जी ने किसी महाकाव्य की रचना नहीं की, परन्तु उन्होंने स्फुट रूप में विपुल राशि हिन्दी काव्य जगत् को प्रदान की है। कदाचित् अलमस्त सनेही जी के निर्बन्ध व्यक्तित्व से महाकाव्य रचना की अपेक्षा भी नहीं की जानी चाहिए। जिस देश में अशिक्षा, अज्ञानता का साम्राज्य हो, जहाँ जीवन की स्वस्थ दृष्टि का अभाव हो, सामाजिक विषमता, राजनैतिक पराधीनता, आर्थिक दैन्य और धार्मिक रूढ़िबद्धता ने पूरे समाज को खोखला कर रखा हो, वहाँ जन-जीवन को छूने का अर्थ ही यह है कि असामान्य भी सामान्य के स्तर पर आ जाये, लेकिन कतिपय हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखकों तथा आलोचकों ने उपर्युक्त प्रकार के कार्य करनेवालों को सामयिक की संज्ञा देकर ऐतिहासिक कृतित्व को महत्त्वहीन बना देने में ही अपनी प्रतिष्ठा समझी। लेकिन तथ्य यह है कि खड़ी बोली हिन्दी कविता के प्रचार-प्रसार में सनेही का बहुत बड़ा हाथ है। भाषा-परिष्कार और काव्य का लोक स्तर पर प्रचार उनकी विशेषता रही। शास्त्रीयता की रक्षा करते हुए आधुनिक भारत की ज्वलंत भावनाओं की अभिव्यक्ति देने में वे सदैव तत्पर एवं अग्रणी रहे। हिन्दी कविता के प्रति निभायी गयी उनकी यह ऐतिहासिक भूमिका क्या भुलाने योग्य है।

भारतेन्दु युग का प्रभाव

सनेही जी का जन्म भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जीवन-काल में हुआ था और जब उन्होंने काव्य-रचना आरम्भ की तब भारतेन्दु का प्रभाव बहुत गहरा था। उनके निधन के बाद भी वर्षों तक हिन्दी छन्द-परम्परा पर उनका प्रभाव रहा। द्विवेदी-युग में भारतेन्दु की छन्द-परम्परा शिथिल पड़ी। ब्रजभाषा और प्रेम-शृंगार का रूप भी परिवर्तित हो गया। द्विवेदी जी से प्रेरित होकर भी सनेही जी उनकी छन्द-परम्परा और उनके द्वारा विकसित जन-चेतना की धारा को पकड़े रहे तथा उसे और भी विकसित किया।

भारतेन्दु हिन्दी काव्य-क्षेत्र के ही नहीं, सम्पूर्ण हिन्दी-साहित्य और भाषा के क्रान्ति-पुरुष हैं। आधुनिक हिन्दी भाषा और साहित्य के संस्थापक, पोषक और प्रचारक के रूप में राष्ट्रभाषा हिन्दी के इतिहास में वे अद्वितीय महापुरुष हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में उनके काव्य-युग को भारतेन्दु-युग के नाम से स्वीकार किया गया है।

भारतेन्दु ने अपनी 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में, सन् 1873 में 'हिन्दी नयी चाल में ढली' लिखकर इसकी घोषणा भी की थी। भारतेन्दु ने इस नयी हिन्दी को बारह वर्ष तक नेतृत्व प्रदान किया। सन् 1885 में भारतेन्दु का निधन हो गया था परन्तु अपनी 35 वर्ष की अल्पायु में ही भारतेन्दु जी ने हिन्दी भाषा और साहित्य को जो आयाम दे दिया था वह आगामी शताब्दियों के लिए पर्याप्त था। भारतेन्दु हिन्दी भाषा और साहित्य को गाँव के गलियारे से निकालकर प्रशस्त मार्ग पर चला चुके थे। भारतेन्दु ने अपने इस महत कार्य में बहुत अच्छे साथी-सहयोगी भी जुटा लिये थे। पं. बालकृष्ण भट्ट, प्रेमघन और पं. प्रतापनारायण मिश्र इत्यादि उनके विशिष्ट सहयोगी थे। भारतेन्दु ने भाषा के प्रश्न को मानव-विकास और उसके हार्दिक उल्लास एवं आत्म-विकास के साथ जोड़कर राष्ट्रीय एवं मानसिक चेतना के केन्द्र में बैठा दिया था।

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
विन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को शूल।।

लिखकर भाषा के महत्त्व को बताने के बाद भारतेन्दु साहित्य-निर्माण और उसके दिशा-निर्देशन की ओर अग्रसर हुए। भारतेन्दु को हिन्दी की छन्द-परम्परा रीतियुक्त, शृंगारी, दरबारी और सामन्ती ढाँचे में ढली हुई मिली थी। स्वयं भारतेन्दु ने इस परम्परा का स्पर्श न किया हो ऐसी बात नहीं, परन्तु भारतेन्दु ने रीतियुक्त शृंगारी परम्परा से प्रभावित होकर भी रीतिमुक्त, नयी चेतना के काव्य का नेतृत्व किया। घनाक्षरी, सवैया की समृद्ध छन्द-परम्परा को उन्होंने प्रकृति, प्रेम, भक्ति और राष्ट्र की नयी चेतना से जोड़ा। ब्रजभाषा की छन्द-परम्परा के साथ-साथ उन्होंने उर्दू-फ़ारसी, ग्रामगीत एवं लोक-प्रचलित धुनें अपनाकर हिन्दी कविता का क्षेत्र, छन्द की दृष्टि से विस्तृत किया। साथ ही भावजगत् का विस्तार किया। राष्ट्रोत्थान, उद्बोधनात्मक भूतकाल का गौरव, वर्तमान की हीनता के प्रति आक्रोश और भविष्य की उत्कृष्टता की अभिकामना भारतेन्दु-युगीन साहित्य की प्रेरक शक्ति थी। भारतेन्दु-युगीन कविता की चर्चा करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखा है :

> "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जिस प्रकार गद्य की भाषा का स्वरूप स्थिर करके गद्य-साहित्य को देश-काल के अनुसार नये-नये विषयों की ओर लगाया, उसी प्रकार कविता की धारा को भी नये-नये क्षेत्रों की ओर मोड़ा। इस नये रंग में सबसे ऊँचा स्वर देश-भक्ति की वाणी का रहा। उसी से लगे हुए विषय लोकहित, समाज सुधार, मातृभाषा का उद्धार आदि थे। हास्य और विनोद की रूढ़ि में हास्यरस के आलम्बन कंजूस ही चले आते थे, पर साहित्य के इस नये युग के आरम्भ से ही इस प्रकार के नये आलम्बन सामने आने लगे। जैसे

पुरानी लकीर के फ़कीर, नये फ़ैशन के ग़ुलाम, नोच-खसोट करने वाले अदालती अमले, मूर्ख और खुशामदी रईस, नाम या दाम के भूखे देश-भक्त इत्यादि। इसी प्रकार वीरता के आश्रय भी जन्म-भूमि के उद्धार के लिए रक्त बहाने वाले, अभाव और अत्याचार का दमन करनेवाले इतिहास-प्रसिद्ध वीर होने लगे।"

(काव्य खण्ड, नयी धारा, प्रथम उत्थान, पृ० 400)

सनेही की कविता में भारतेन्दु-युगीन परम्परा को न सिर्फ़ प्रश्रय प्रत्युत् विकास भी मिला और जैसा अन्यत्र कहा गया है कि सनेही उससे आगे गये। आचार्य शुक्ल के अनुसार नयी धारा काव्य का द्वितीय उत्थान सं. 1930 से 1976 तक है। इस उत्थान के प्रतिनिधि कवियों में पं. श्रीधर पाठक, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय और लोचनप्रसाद पाण्डेय को आचार्य पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी से प्रोत्साहित तथा प्रभावित बताते हुए आचार्य शुक्ल ने द्विवेदी मण्डल के के बाहर की काव्य-भूमि के अन्तर्गत राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', नाथूराम शर्मा 'शंकर', पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', पं. रामनरेश त्रिपाठी, सत्यनारायण कविरत्न तथा पं. रूपनारायण पाण्डेय इत्यादि नामों का उल्लेख किया है। शुक्ल जी के काल-विभाजन के अनुसार हिन्दी का यह द्विवेदी युग था। द्विवेदी जी खड़ी बोली कविता में छन्द के लिए संस्कृत वर्णवृत्तों तथा बोलचाल की भाषा पर अधिक ज़ोर देते थे। भारतेन्दु की राष्ट्रीय काव्य-धारा के विकास में आचार्य द्विवेदी की 'सरस्वती' का प्रभाव कम तथा 'हिन्दी प्रदीप', 'भारत मित्र', 'हिन्दी केशरी', 'प्रताप' जैसे पत्रों का अधिक है। हिन्दी साहित्य के इतिहास की यह काव्य-धारा तृतीय उत्थान सन् 1975 के बाद और भी पुष्ट हुई। यद्यपि इसी युग में छायावाद आया परन्तु उसके समानान्तर राष्ट्रीय चेतना की जनोन्मुखी काव्य-धारा स्वातंत्र्य पूर्व तक बड़े वेग से बहती रही। निःसन्देह भारतेन्दु तथा द्विवेदी-युगीन नयी काव्य-धारा स्थूलता से मुक्त नहीं थी तथा साधारण भाव-भंगिमा और जनसामान्य में गृहीत भाषा-शैली का प्रचार-प्रसार हुआ, परन्तु काव्य की रसात्मक अभिव्यक्ति, नयी व्यंजनाओं, नये छन्दों के साथ छायावाद में पल्लवित हुई। कदाचित् इसीलिए छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह कहा गया है। यहाँ यह सर्वथा स्मरणीय है कि पुरानी छन्द शैली में लिखनेवाले उत्कृष्ट कवियों ने भाषा और भाव दोनों ही स्तर पर बड़ी सुन्दर फुटकर रचनाएँ की हैं एवं छायावाद की भावाभिव्यंजना, कोमल कमनीय भाषा की रक्षा करते हुए पुराने छन्द में उत्तमोत्तम रचनाएँ हुईं। छायावाद के धूम-धड़ाके के बीच जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' इत्यादि के नाम प्रमुख रूप से लिये जा सकते हैं जिनमें प्रकृति-प्रेम और दर्शन की गहराई का समावेश हुआ। इस दिशा में स्वयं सनेही, अनूप शर्मा, वचनेश मिश्र और रूपनारायण पाण्डेय का नाम भी उल्लेखनीय है।

भारतेन्दु की परम्परा का प्रभाव सनेही जी के आरम्भिक काल में अधिक देखने को मिलता है। छन्द का गठन, भाषा माधुर्य और सहज बोधगम्यता इनकी रचनाओं में सदैव रही हैं। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ काल के सनेही की रचनाओं में उनकी प्रेमपच्चीसी का एक छन्द देखें :

जेहि चाह सों चाह्यों तुम्हें प्रथमें,
अबहूँ तेहि चाह सौं चाहनो है।
तुम चाहो न चाहो लला हमको,
कहूँ दीबो न याको उराहनो है।
दुख दीजै कि कीजै दया दिल में,
हर रंग तिहारो सराहनो है।
मन भावै करो, मनभावन तो,
हमें नेह को नातो निबाहनो है।

राष्ट्रीय चेतना

परन्तु जैसा हमने अन्यत्र भी कहा है कि सनेही जी पर भारतेन्दु की परम्परा का प्रभाव बीज रूप में ही है। राष्ट्रीय चेतना की मुखरता उनके काव्य में गणेश-शंकर विद्यार्थी के निकट सम्पर्क में आने पर ही हुई। विद्रोह का स्वर और स्वतंत्रता के संघर्ष में वैताली का स्वरूप उनमें द्विवेदी-युग के अन्तर्गत ही उत्पन्न हुआ था।

सनेही जी ने अपनी काव्य-यात्रा को राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक क्रान्ति के आन्दोलन के साथ जोड़कर राष्ट्रीय जागरण का मनोरम उदाहरण प्रस्तुत किया। बीसवीं सदी के पूर्वार्ध अथवा स्वतंत्रता-पूर्व की जनचेतना तथा राष्ट्रीय कामना से ओत-प्रोत तथा संघर्ष के स्वर जितने प्रखर सनेही जी की रचनाओं में मिलेंगे, अन्यत्र दुर्लभ हैं।

जो भरा नहीं है भावों से,
बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है,
जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।।

जैसी प्रखर पंक्तियाँ लिखकर सनेही ने एक नयी दृष्टि हिन्दी कविता को प्रदान की थी। देश-प्रेम और बलिदान की जैसी समग्रता और एकता सनेही ने अपनी कविताओं में दी, उसने देशवासियों में आग फूँकने का अद्भुत कार्य किया था, साथ ही, राजनैतिक क्षेत्र में चलनेवाले आन्दोलनों का समर्थन करते गये और उन्हें जुझारू दृष्टि भी प्रदान की।

भारतेन्दु-युग की एक विशेषता यह थी कि तत्कालीन काव्य में प्रेम-श्रृंगार के

साथ समाज-सुधार और वर्तमान दुर्दशा पर आँसू बहाने का स्वर गूँजने लगा था। भारतेन्दु देश की दुर्दशा से दुखी एवं पीड़ित थे। वे इस स्थिति के करुण गायक थे परन्तु दुर्दशामुक्त होने की प्रक्रिया अथवा उसके विशेष संघर्ष की भूमिका के नेता वे नहीं थे। सामाजिक चेतना के बीच और आत्महीनता के विरुद्ध आक्रोश की स्थिति भारतेन्दु-युग की विशेषता थी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की परम्परा का आरम्भ में प्रभाव सनेही पर अवश्य दिखायी देता है परन्तु वे उसे आगे की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करनेवाले कवि थे।

पं. नन्ददुलारे वाजपेयी ने सनेही जी की कविता का सही मूल्यांकन किया है। श्री वाजपेयी ने लिखा है :

> "सन् 1920 के पश्चात् कवि सनेही सामाजिक करुणा और ग्रामीण जीवन की असाध्य परिस्थिति का चित्रण जोड़कर अधिक उग्र और तेजस्वी कविता लिखने लगे। क्रान्ति की भावना अधिक प्रखर हो उठी। पहले बाल गंगाधर तिलक और कुछ ही दिनों पश्चात् महात्मा गाँधी के भारतीय रंगमंच पर आ जाने और राजनैतिक नेतृत्व का सूत्र हाथ में ले लेने के कारण राष्ट्रीय परिस्थितियों ने जो करवट ली उससे हम सभी परिचित हैं। सनेही जी इस नवीन अभियान के हिन्दी क्षेत्र में कदाचित् सर्वप्रथम प्रमुख कवि अभिवक्ता रहे हैं। दूसरे कवि स्वतंत्रता आन्दोलन से दूसरे रूपों में प्रभावित हुए पर आन्दोलन का सीधा साथ देने वालों में सनेही जी अन्यतम थे। तिलक और गाँधी की प्रशस्ति लिखकर उन्होंने काव्य-क्षेत्र में एक नये राजनीतिक युग का स्वागत किया और इसके पश्चात् वे एक-एक राजनीतिक घटनाओं और प्रसंगों को लेकर अनवरत काव्य-रचना करने लगे।"

(**अभिनन्दन ग्रन्थ**, पृ. 50-60)

वाजपेयी जी का उक्त कथन सर्वथा ठीक है क्योंकि सनेही जी का राष्ट्रीय स्वरूप 1920 के बाद निश्चय ही प्रखर हो गया था। राष्ट्रीय चेतना तथा स्वातंत्र्य संघर्ष का कदाचित् ही कोई प्रभाव, घटना या प्रसंग हो, जिसे सनेही की लेखनी ने न छुआ हो। गाँधी जी की अहिंसा के प्रबल समर्थक, प्रचारक होते हुए भी तिलक की क्रान्तिकारिता से भी सनेही का हृदय जुड़ा रहा है। वीरता, साहस, त्याग, बलिदान और राष्ट्र के लिए प्राण अर्पण की तैयारी का राग सनेही ने बड़ी मस्ती के साथ गाया है।

वस्तुतः सनेही की राष्ट्रीय विचारधारा को स्थायी और मूर्तरूप देने का श्रेय गणेशशंकर विद्यार्थी और उनके 'प्रताप' को है। सन् 1913 में साप्ताहिक प्रताप के प्रकाशन से ही हिन्दी क्षेत्र में राष्ट्रीयता का युग आरम्भ हुआ था। राजनैतिक दृष्टि की इतनी सटीक अभिव्यक्ति कदाचित् उससे पहले इतने व्यापक रूप में

सामने नहीं आयी थी। प्रताप ने भारतीय जागरण में ऐतिहासिक महत्त्व का कार्य किया। लेख, कविता, नाटक इत्यादि सभी दिशाओं में हिन्दी भाषा के तेवर की प्रतिष्ठा की थी। श्रृंगार और प्रेम के कवि सनेही ने प्रताप के माध्यम से ही 'त्रिशूल' का रूप अपनाया। सनेही जब स्कूल मास्टरी के रूप में सरकारी नौकरी कर रहे थे तभी उनका सम्पर्क गणेशशंकर विद्यार्थी जी से हुआ। उनसे कानपुर में भेंट के अवसर पर सनेही जी ने गणेश जी से कहा कि विद्यार्थी जी, मुझे कुछ काम बताइये। उत्तर में गणेश जी ने विनोद करते हुए कहा—'अरे मैं तो विद्यार्थी हूँ और आप मास्टर हैं। भला मैं आपको क्या बता सकता हूँ।' फिर उन्होंने सनेही जी से राष्ट्रीय समस्याओं और जनजागरण के लिए कविताएँ लिखने का अनुरोध किया। सनेही जी ने विद्यार्थी जी के अनुरोध को स्वीकार किया और 'त्रिशूल' छद्म नाम से उग्र राष्ट्रीय रचनाओं का लिखना शुरू किया। त्रिशूल की भाषा और शैली ऐसी थी कि सनेही और त्रिशूल एक ही कवि हैं, यह वर्षों तक लोगों को पता भी नहीं चला। यह रहस्य जब खुलने लगा, तब सनेही ने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। राष्ट्रीय रचनाओं में भाषा की सरलता, छन्द का गतिमान स्वरूप और हृदय में सीधे घर करनेवाली शैली अपनायी। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रभाव से सनेही ने सामाजिक न्याय, सुधारवाद एवं नवीन चेतना के भावों को काव्य का विषय बनाया था, तो गणेश जी से प्रभावित होकर उन्होंने राष्ट्रवाद का मार्ग अपनाया। तिलक और गाँधी उनके आदर्श एवं प्रेरक बने।

भारतेन्दु ने लिखा :

> आवहु सब मिलकर रोवहु भारत भाई,
> हा-हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।
> × × ×
> अँगरेज़ राज सुख साज सजे बहुभारी।
> पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी॥

भारतेन्दु-युग के प्रतिनिधि पं. प्रतापनारायण मिश्र में राजनैतिक एवं सामाजिक चेतना अधिक मुखर हुई थी। मिश्र जी की छन्द की तीव्रता देखें :

> सब धन लिहे जात अँगरेज,
> हम केवल लेक्चर के तेज़।

अंग्रेज़ी राज के किसी भी सुख को वे स्वीकार नहीं करते थे। मिश्र जी के विचार से 'बन्दर काके मीत, कलन्दर केहि के भाई'।

सनेही की कविता सीधी लड़ाई की घोषणा करती है। सन् 1921 में असहयोग आन्दोलन के समय उन्होंने यह काव्यात्मक ललकार उठायी थी :

असहयोग कर दो, असहयोग कर दो।
कड़ी है परीक्षा न रहने क़सर दो।
न अन्याय के आगे तुम झुकने सर दो।
गँवाओ न गौरव नये भाव भर दो।
हुई जाति बेपर है तुम इसको पर दो।
असहयोग कर दो, असहयोग कर दो।।

× × ×

हृदय चोट खाये दबाओगे कब तक।
बने नीच यों मार खाओगे कब तक।
तुम्हीं नाज़ बेजा उठाओगे कब तक।
असहयोग कर दो, असहयोग कर दो।।

सन् 1929 में सनेही ने 'भारत सन्तान' कविता में लिखा :

वैध आन्दोलन पर तुल गये,
आज हैं हम फिर मिल-जुल गये,
दाग़ हृदयों के हैं धुल गये,
आज फिर जौहर हैं खुल गये।।
हमारा भूत-भविष्य महान गूँजती गली-गली यह तान।
वही हम हैं भारत-सन्तान, वही हम हैं भारत-सन्तान।।

× × ×

हमारे जन्मसिद्ध अधिकार
अगर छीनेगा कोई यार,
रहेंगे कब तक मन को मार
सहेंगे कब तक अत्याचार।
कभी तो आवेगा यह ध्यान,
सकल मनुजों के स्वत्व समान
वही हम हैं भारत-सन्तान।।

सन् 1918 में 'शैदाए वतन' में 'त्रिशूल' रूप में सनेही ने देश के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए लिखा था :

आरज़ू है कि इसे चश्म-ए-ज़र से सींचें,
बन पड़े ग़र तो इसे आवे गुहर से सींचें,
आवे हवा न मिले दीद-ए-तर से सींचें,
आ पड़े वक़्त तो फिर ख़ूनेजिगर से सींचें।

हड्डियाँ रिज़्क हुमाँ बनके न बरबाद रहें,
घुल के मिट्टी में मिलें खाद बनें, याद रहें।
× × ×
हम सितम लाख सहें नाम के बेदाद रहें,
आहें थामे हुए रोके हुए फ़रियाद रहें।
इसकी परवाह किसे शाद कि नाशाद रहें,
हम रहें या न रहें ऐसे रहें, याद रहें।।
हम उजड़ते हैं तो उजड़ें, वतन आबाद रहे,
हों गिरफ़्तार तो हों, पर वतन आज़ाद रहे।

सत्याग्रही की दृढ़ता के सन्दर्भ में :

मैं डरने का नहीं चमकती तलवारों से,
जंजीरों की जकड़ कठिन कारागारों से।
× × ×
तुम होगे सुकरात ज़हर के प्याले होंगे,
हाथों में हथकड़ी पदों में छाले होंगे।
ईसा से तुम और जान के लाले होंगे,
होगे तुम निश्चेष्ट डस रहे काले होंगे।।
होना मत व्याकुल कहीं इस भवजनित विषाद से,
अपने आग्रह पर अटल रहना बस प्रह्लाद से।।

ऊपर के कुछ उदाहरणों से यह सिद्ध है कि सनेही की राजनैतिक एवं सामाजिक चेतना, आत्म-बोधात्मकता से आगे बढ़कर एक विद्रोही की बनती गयी है। पं. नन्ददुलारे बाजपेयी जी का कथन उन पर पूरी तौर पर लागू होता है कि 'उन्होंने सभी प्रसंगों और परिस्थितियों को अपनी कविता का अंग बनाया।'

सनेही जी अपने युग के कदाचित् अकेले व्यक्ति हैं जिन्होंने अपनी काव्य-यात्रा को राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक क्रांति की चेतना के साथ जोड़कर राष्ट्रीय जागरण का अनोखा उदाहरण प्रस्तुत किया। वस्तुतः बीसवीं सदी की राष्ट्रीय चेतना और संघर्ष के स्वर जितने मुखर सनेही की कविता में हैं, अन्यत्र दुर्लभ हैं।

स्वाधीनता के दिवस तक उनकी लेखनी ने विराम नहीं लिया। प्रथम स्वतन्त्रता दिवस 1947 पर उन्होंने लिखा :

मनोरथ महाराज तिलक का पूर्ण हुआ,
मोहन का सिद्ध महा मुक्ति मन्त्र हो गया।

जौहर दिखाये नर नाहर जवाहर ने,
विफल विरोधियों का षड्यन्त्र हो गया ।।
आ गया अचानक ही सामने स्वराज आज,
जाने कौन जादू था कि मंत्र-तंत्र हो गया ।
पूरी कामना हुई सनेही देश प्रेमियों की,
आधी रात बीते हिन्द है स्वतन्त्र हो गया ।।

स्वराज्य के बाद सनेही जी की क़लम की धार कम हो गयी थी । पैंसठ वर्ष की आयु का भी इसमें कारण हो सकता है । परन्तु आयु ने सनेही जी पर बहुत कम प्रभाव डाला । सच तो यह है कि सनेही जी स्वतन्त्रता-संघर्ष के कवि योद्धा की तरह कार्यरत रहे और उद्देश्य प्राप्त होने पर अपने कार्य को विराम दे दिया । बलिदान, त्याग, तपस्या, समर्पण, राष्ट्र-प्रेम, वीरता, करुणा के प्रति जिसने जीवन भर अपनी लेखनी को अविराम चलाया, उसे सत्ता की उलटी राजनीति में रस नहीं मिला ।

सनेही का दृष्टिकोण सदैव राष्ट्रीयता का रहा है । भाषा, क्षेत्र, व्यक्ति, धर्म-समुदाय को उन्होंने कभी महत्त्व नहीं दिया । सनेही जी भारतीयता के पूर्णतः उपासक थे और जो बात उन्हें देश-हित की जान पड़ी, उसे उन्होंने अपनाया । किसी भी व्यक्ति, जाति, धर्म, सम्प्रदाय के नाम पर राष्ट्र-विरोधी विचार को उन्होंने कभी भी स्वीकार नहीं किया ।

रस और अलंकार योजना

सनेही जी रससिद्ध कवि थे । उनकी सहज प्रतिभा किसी भी भाव-स्थिति से तादात्म्य करती हुई उसका पूर्ण रसमय चित्र उपस्थित कर सकती थी । राजशेखर ने ऐसे नैसर्गिक प्रतिभासम्पन्न कवियों को सारस्वत कवि की संज्ञा दी है । शृंगार, वीर, रौद्र, करुण, हास्य, शान्त आदि सभी रसों पर सनेही जी का पूर्ण अधिकार दिखायी पड़ता है । 'अशोक वन में सीता', 'दुःखनी दमयन्ती', 'शैव्या-संताप', 'श्रवण शोक', 'कौसल्या क्रन्दन' आदि कविताएँ करुण रस से परिपूर्ण हैं । उनकी मार्मिकता असंदिग्ध है । 'शैव्या संताप' सम्भवतः सर्वाधिक हृदय-द्रावक है । उसका आरम्भ ही श्मशान के करुण उदास वातावरण के चित्रण के साथ होता है :

उदासी घोर निशि में छा रही थी,
पवन भी काँपती थर्रा रही थी ।
विकल थी जाह्नवी की वारि धारा,
पटक कर सिर गिराती थी कगारा ।।

छूटा घनघोर नभ पर घिर रही थी,
बिलखती चंचला भी फिर रही थी।
न थे वे बूंद आँसू गिर रहे थे,
कलेजे बादलों के चिर रहे थे।।

और रोहित की मृत्यु पर माँ की व्यथा कितने सशक्त ढंग से अभिव्यंजित की गयी है :

छुटा सब कुछ, छुटे हा लाल ! तुम भी,
लुटा सब कुछ, लुटे हा लाल ! तुम भी।
अरे वह है कहाँ पर सर्प बसता,
मुझे भी क्यों नहीं है नीच डसता ?
अभी तो दूध भी छूटा नहीं था,
नजर भर देख सुख लूटा नहीं था।
मरूँ कैसे हृदय का भार टालूँ ?
अरे यह प्राण मैं कैसे निकालूँ ?

तभी श्मशान भूमि में राजा हरिश्चन्द्र को देखकर शैव्या की करुणा दुगुने वेग से फूट पड़ती है :

उन्हें पहचान रानी रो उठी फिर,
करुण रस वारि वर्षा हो उठी फिर।
कहाँ थे नाथ तुम हा लुट गयी मैं,
कुँवर से हाय अपने छुट गयी मैं।।

गाँधी जी, महावीरप्रसाद द्विवेदी और नवीन जी की मृत्यु पर लिखी हुई रचनाएँ भी विशेष रूप से मार्मिक और करुण रस प्लावित हैं।

वीर और रौद्र रस की भूमि 'त्रिशूल' के आधिपत्य में है। राष्ट्रीय कविता का अधिकांश स्वातंत्र्य युद्ध के वीरोत्साह से रंजित है। उसमें कहीं रणभेदी का भैरव नाद है, कहीं प्रतिपक्षियों को दी हुई वीरों की ललकार है, कहीं बलिवेदी पर शीश चढ़ाने की करुण आकांक्षा है तो कहीं मंज़िल तक पहुँचने का दृढ़ निश्चय। 'त्रिशूल' की ये ओजस्वी रचनाएँ अधिकतर हिन्दी-उर्दू के गंगा-जमुनी परिधान में दिखाई पड़ती हैं :

उमड़ा वतन में क़ौमी मुहब्बत का जोश है,
हिम्मत बढ़ी हुई है शुजाअत का जोश है।
हर एक नौजवान में गैरत का जोश है,
रोकेगा कौन इसको क़यामत का जोश है।।

है क्या अजब जो क़ब्रों से मुर्दे निकल पड़े।
'जयहिन्द' बोल बोल के दिल्ली को चल पड़े ।।

उनके ब्रजभाषा के छन्दों में श्रृंगार की बहुलता दिखायी पड़ती है। ये छन्द कभी समस्यापूर्तियों के व्याज से और कभी बैठे-बिठाये मन की मौज में लिखे गये होंगे। ये स्फुट छन्द रीतिकाल की मनोज्ञ परम्परा के छूटे और बिखरे हुए बहुमूल्य रत्नकण हैं, संयोग श्रृंगार के निम्नलिखित छन्द में नायक-नायिका के प्रगाढ़ प्रेम-व्यापार के साथ प्रकृति से प्राप्त अप्रस्तुतों की सरस-क्रीड़ा का संयोजन कितना चित्ताकर्षक हो गया है। ऐसा संश्लिष्ट चित्र कोई असामान्य कोटि का कवि ही देखता है :

घूमें घनश्याम स्यामा-दामिनी लगाये अंक,
सरस जगत सर सागर भरे-भरे।
हरे भरे फूले-फले तरु पंछी फूले फिरें,
भ्रमर सनेही कालिकान पै अरे-अरे ।।
नन्दन विनिन्दक विलोकि अवनी की छवि,
इन्द्रवधू वृन्द आतुरी सौं उतरे तरे।
हरे हरे हार मैं हरित नैनी हेरि हेरि,
हरखि हिये मैं हरि बिहरैं हरे हरे ।।

श्रृंगार के अन्तर्गत विरह की दस अवस्थाएँ बतायी गयी हैं—अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण। अन्तिम अवस्था (मरण) का वर्णन वर्जित है क्योंकि उसमें रस-विच्छेद की आशंका रहती है। रति का स्थान शोक ले लेता है। 'रस विच्छेद हेतु त्वन्मरण नैव वप्यते' (साहित्य दर्पण, तृतीय परिच्छेद 193)। कवि लोग विरह की तीव्रता दिखाने के लिए वास्तविक मरण के स्थान पर मरण तुल्य दशा का वर्णन कर देते हैं। नीचे के छन्द में नायिका की मरण तुल्य दशा का उन्माद, प्रलाप आदि अवस्थाओं के साथ हृदयग्राही वर्णन है :

नारी गही बैद सोऊ बेनि गो अनारी सखि,
जाने कौन व्याधि याहि गहि गहि जाति है।
कान्ह कहै चौंकत चकित चकराति ऐसी,
धीरज की भीति लखि ढहि ढहि जाति है ।।
कही कहि जाति नहिं, सही सहि जाति नहिं,
कछू को कछू सनेही कहि कहि जाति है।
बहि बहि जात नेह, दहि दहि जात देह,
रहि रहि जाति जान रहि रहि जाति है ।।

विरह-व्यथित नायिका की विकलता के इस सजीव शब्द-चित्र को पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार के सुन्दर प्रयोग ने कैसा चमका दिया है ?

वियोग में प्रेमी के हृदय की रागात्मकता बढ़ जाती है। नायिका के हृदय में प्रिय की मोहिनी मूर्ति बसी है किन्तु प्रिय वियोग से हृदय के दो टुकड़े हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि प्रिय के रूप का प्रतिबिम्ब दर्पण के दोनों टुकड़ों में पड़ने लगता है। स्वभावतः पीड़ा भी दूनी हो जाती है। एक ही चित्र घड़ी-घड़ी प्राणों को सालता रहता था और अब दो प्रतिबिम्बों के एक ही स्थान पर स्थित हो जाने की दशा में वियोगिनी के कष्ट की कल्पना कीजिए :

दर्पण में हिय के वह मूरति आय बसी न चली तदबीरैं।
सो ह्वै दु टूक सनेही गयो पै परी विरहागिनि ताप की भीरैं।।
दोउन में प्रतिबिम्बित है छवि दूनी लगी उपजावन पीरैं।
सालति एकै रही जिय में अब एक तै ह्वै गयी द्वै तसवीरें।।

वियोगिनी के मन को बाँधने के लिए आशा ही एकमात्र सहारा है। प्रिय का सन्देश उस सहारे को मजबूत करता है, उसकी सोयी हुई अभिलाषाओं को जगा देता है। प्रिय के हाथों की लिखी हुई पाती नायिका के हाथों में आती है तो भावों की भीड़ हृदय में सघन होने लगती है। हर्ष, आशंका, स्मृति, लज्जा, समर्पण, श्रद्धा और संतोष न जाने क्या-क्या उसके नेत्रों से बहनेवाली प्रेमाश्रुधारा में तैरने लगता है। वह एक साथ हँसती और रोती है। इस स्थिति का चित्र निम्न छन्द में दर्शनीय है :

संकित हिये सों पिय अंकित सन्देशो बांच्यो,
आई हाथ थाती सी सनेही प्रेमपन की।
नीलम उधर लाल ह्वै कै दमकन लागे,
खिच गयी मधु रेखा मधुर हँसने की।।
स्याम घन सुरति सुरस बरसन लागो,
वारें आस मोती, आस पूरी अँखियन की।
माथ सों छुवाती सियराती लाय लाय छाती,
पाती आगमन की बुझाती आग मन की।।

इसी प्रकार उनके लिखे हुए निर्वेद (शांत) के अनेक छन्द मिलते हैं। दो-चार छन्द हास्य-रस के भी हैं। भयानक और वीभत्स की झलक भी कहीं-कहीं दिखाई पड़ जाती है पर इनमें कवि की वृत्ति पूर्णतया रमती हुई नहीं मालूम पड़ती। ऐसा लगता है कि कवि ऊपर ही ऊपर तैरकर निकल गया है, भाव की गहराई में डूब-कर थाह नहीं ले सका है।

अलंकार भावाभिव्यक्ति के साधन होते हैं, साध्य नहीं। उनके प्रयोग में

पर्याप्त सावधानी की जरूरत है। सनेही जी प्रयासजन्य अलंकरण के विरोधी थे। रससिद्ध कवियों को अलंकारों के पीछे भागने की आवश्यकता ही नही पड़ती, वे अर्थगौरव की अभिवृद्धि के लिए, उक्ति के सौंदर्य के उत्कर्ष के लिए सृजन के क्षणों में अनायास उनके पास आ जाते हैं। समर्थ कवियों को प्राप्त होनेवाली यह सिद्धि सनेही जी को भी मिली थी। पर सनेही जी मात्र कवि नही, कवियों के गुरु यानी आचार्य भी थे। इसलिए यह कौशल एकाध जगह अपने रचना-नैपुण्य का प्रदर्शक भी बन गया है।

अलंकारों में अनुप्रास, उपमा, रूपक आदि तो प्रायः सर्वत्र मिलते हैं, कहीं-कहीं अपह्नुति, संदेह, विरोधाभास, अर्थान्तिरन्यास, परिसंख्या, एकावली भी दिखायी दे जाते है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

उपमा :

नाचति परी-सी सफरी-सी समरांगण में,
अरि दल पारावार पैरि जाति पल में।

रूपक (सांग) :

ग्रीष्म स्वर्णकार बना भट्टी-सा नगर वर,
घरिया-सा घर वस्त्र भूषण अंगारा-से।
मारुत की धौंकनी प्रचंड तन फूँके देती,
उठते बगूले हैं विचित्र धूम धारा-से॥
छार छार ही है, दम नाक में ही ला रही है,
बचना कठिन है सनेही और द्वारा से।
आके घनश्याम जो न देंगे कहीं दर्श रस,
ताप वश पल में उड़ेंगे प्राण पारा से॥

अपह्‌नुति :

तम राज नही जमघट जमराज का है।
नवचन्द्र नहीं क्रूर काल की कटारी है॥

अर्थान्तिरन्यास :

चिड़ियाँ चलीं तरु और चों चों में चुगा चुपचाप ले,
देंगी उसे निज चेटुओं को चिबुक चुम्बन आप ले।
किस जीव को अनुराग विरल स्वजन से होता नहीं,
निज तनय-अंगस्पर्श करके कौन दुख खोता नहीं॥

उल्लेख :

हाय वह आशाओं का केन्द्र
अन्त वह जीवन-सरिता-स्त्रोत,
आह वह अरमानों का यान
भावना सागर का वह पोत
कहीं क्या डूबा मेरा हृदय ?

विरोधाभास :

परम समीप होके रहते हैं दूर-दूर ।
रूपवान होकर अरूप रूप धारे हैं ।।

उदाहरण :

हरभक्त हरि हर के भजन में ही रहे तल्लीन हैं ।
जैसे अगाध सरोवरों में पा रहे सुख मीन हैं ।।

एकावली :

बेलें तरुओं पै चढ़ीं, बलों पर चढ़े फूल ।
फूलों पै भ्रमर, छिड़ा समर बसंती है ।।

परिसंख्या :

दान गज में है, मानिनी के मन में है मान,
आँखें लड़ने में रही अब तो लड़ाई है ।
भौंहों में कमान रही तीर नजरों में रहे;
रही दिलदार ही के दिल में कड़ाई है ।।
गढ़ने में बातें रहीं, बढ़ने में रहे बाँस,
पढ़ने में टाँग 'कैट-रैट' ने अड़ाई है :
कला नट में है रंग पट में रहा है शेष,
पानी घट में है और बट में बड़ाई है ।।

यमक :

माथ सौं छुवाती सियराती लाय लाय छाती ।
पाती आगमन को बुझाती आग मन की ।।

संदेह :

मोहक मृगांक-मुख मोहे ले रहा है मन,
कोई सुर-सुन्दरी सनेही है कि राका है ?

इस प्रकार सनेही जी की कविताओं में अलंकार योजना भरपूर है परन्तु कहीं भी उलझाव अथवा अस्पष्टता नहीं दिखाई देती। वस्तुतः सनेही जी काव्य में प्रसाद गुण के पक्षपाती थे। सरलता और सहज अभिव्यक्ति उनकी विशेषता थी।

साम्यवाद और सनेही जी

कुछ लोगों ने सनेही जी को साम्यवाद का समर्थक सिद्ध करने की भी चेष्टा की है। यह इस कारण हुआ कि सनेही ने समता, समानता और साम्यवाद शब्द का प्रयोग भी अपनी कविताओं में किया है। साम्यवाद का प्रयोग उन्होंने सबसे कम किया है। कदाचित् दो-चार स्थान के अलावा नहीं। यह शब्द रूसी-क्रांति के बाद देश के बौद्धिक वर्ग में अधिक प्रचलित होने लगा था, परन्तु सनेही जी का साम्यवाद से परिचय गणेशशंकर विद्यार्थी के कारण हुआ था। स्मरण रहे कि रूसी क्रांति पर प्रताप ने सम्पादकीय अग्रलेख के अलावा कई लेख छापे थे और प्रताप कार्यालय से साम्यवाद तथा साम्यवादी क्रांति के नेताओं की जीवनी इत्यादि भी प्रकाशित हुई थी। सनेही जी ने उस नये दर्शन की हिन्दी कविता में अगवानी की थी, परन्तु यह स्मरण रहना चाहिए कि मानववादी दृष्टिकोण के प्रचारक होकर भी सनेही राष्ट्रवादी के रूप में ही रहे हैं। वे राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय समस्याएँ, राष्ट्रीय जीवन दृष्टि और राष्ट्रीय आंदोलन के गायक थे। सनेही की राष्ट्रीयता, भाषा, धर्म, जाति, सम्प्रदाय की संकुचितता से सर्वथा मुक्त रही। इसीलिए जब उनके 'त्रिशूल' नाम से लिखी गयी उर्दू अथवा हिन्दुस्तानी शैली में लिखी कविताओं पर उँगली उठायी गयी तो उन्होंने उत्तर दिया :

अब वतन देखूँ कि सरकार की अबरू देखूँ,
हिन्द को देखूँ कि अब मुसलमां हिन्दू देखूँ।
तहकी समझेंगे सखुन फहम जवां हो कोई,
काम अपना करूँ या हिन्दी ओ उर्दू देखूँ।।

इसी प्रकार साम्यवाद को राष्ट्रीय समता समानता से जोड़कर ही उन्होंने देखा। अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिज़्म उनका आदर्श नहीं था। इसके विपरीत वह साम्यवाद को भी भारतीय ढाँचे में ही ढालकर लिख रहे थे। सनेही जी की राष्ट्रीयता शीर्षक कविता में देखें :

साम्यवाद बन्धुत्व एकता के साधन हैं,
प्रेम सलिल से स्वच्छ निरन्तर निर्मल मन हैं।
डाल न सकते धर्म आदि कोई अड़चन हैं,
उदाहरण के लिए स्वीस है अमेरिकन है।।

मिले रहे मन मनोमें अभिलाषा भी एक हो,
सोना और सुगन्ध हो यदि भाषा भी एक हो।
अंग राष्ट्र का बना हुआ प्रत्येक व्यक्ति हो,
केन्द्रित नियमित किये सभी को राजशक्ति हो।।
भरा हृदय में राष्ट्र गर्व हो देश भक्ति हो,
समता में अनुरक्ति विषमता मे विरक्ति हो।
राष्ट्र पताका पर लिखा रहे नाम स्वाधीनता,
पराधीनता मे नही बढ़कर कोई हीनता।।

इसी युग की 'साम्यवाद' शीर्षक रचना में सनेही ने लिखा :

समदर्शी फिर साम्य रूप धर जग में आया,
समता का संदेश गया घर-घर पहुँचाया।
धनद रंक का ऊँच नीच का भेद मिटाया,
विचलित हो वैषम्य वहुत रोया चिल्लाया।।
काँटे बोये राह में फूल वही बनते गये,
साम्यवाद के स्नेह में सुजन सुधी सनते गये।
ठहरा यह सिद्धांत स्वत्व सबके सम हों फिर,
अधिक जन्म से एक दूसरे कम क्यों हो फिर।
पर सेवा में लगे-लगे क्यों वेदम हों फिर,
जो कुछ भी हो सके साथ ही सब हम हों फिर।।
सांसारिक सम्पत्ति पर सबका सम अधिकार हो,
वह खेती या शिल्प हो विद्या या व्यापार हो।।

और अंत में :

सरिता सरि की वाढ़ में ऊँच नीच वह जायगा,
समतल जल ही की तरह एक रूप रह जायगा।।

उनके छन्दों में भी भारतीय चिंतन की ही प्रधानता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना और गाँधी की समता की दृष्टि को ही अभिव्यक्ति मिली है। 'भारत संतान' शीर्षक रचना में सनेही ने स्पष्ट लिखा है :

किसी को नहीं बनाया दास,
किसी का किया नहीं उपहास।
किसी का छीना नहीं निवास,
किसी को दिया नहीं है त्रास।
किया है दुखित जनों का त्राण,
हाथ मे लेकर कठिन कृपाण।।
वही हम हैं भारत संतान—वही हम हैं भारत संतान।।

और :

हमारे जन्मसिद्ध अधिकार,
अगर छीनेगा कोई यार।
रहेंगे कब तक मन को मार,
सहेंगे कब तक अत्याचार।
कभी तो आवेगा यह ध्यान,
सकल मनुजों के स्वत्व समान ।।
वही हम हैं भारत संतान—वही हम हैं भारत संतान ।।

स्वतंत्रता का स्वागत करते हुए सनेही जी ने लिखा था :

मनोरथ महाराज तिलक का पूर्ण हुआ,
मोहन का सिद्ध महा मुक्ति मंत्र हो गया ।।

और दूसरे छन्द में लिखा :

सुदिन स्वराज का स्वतंत्रता का समता का,
सत्य का सनेह का सनेही आज आ गया ।।

अर्थात् सनेही का साम्य और समता के आदर्श तिलक और गाँधी थे। जिस प्रकार गणेशशंकर विद्यार्थी को गाँधी भक्त होने के बावजूद अहिंसात्मक नहीं कहा जा सकता। वे तिलक के अनुयायी थे और बाद में गाँधी को अपने आदर्श के अनुरूप मानकर उनको अग्रणी स्वीकार किया था। भारत की गरीबी, शोषण, दोहन और स्वार्थपरता के विरुद्ध होनेवाले प्रत्येक संघर्ष के साथ उनकी सहानुभूति रहती थी। इसीलिए वे क्रांतिकारियों के संरक्षक और सहयोगी रहे। सनेही जी की कविताओं पर भी यह बात लागू होती है कि तिलक और गाँधी को आदर्श मानने के बावजूद देश के सुखद भविष्य के लिए जो भी विचार-कार्य और घटना उन्हें रुची, उसे अपनी कविता का आधार बनाया। जैसाकि हमने पहले कहा है कि देश-भक्ति की भावना उनकी कविता की एकांत साधना भूमि है। सन् 1937 में सनेही जी ने अपने एक छन्द में कहा :

पावन पुजारी बस एक देश देवता के,
चाहे जिस पंथ में हों चाहे जिस वेश में ।।

सनेही जी की उदात्त जीवन-दृष्टि ने किसी अन्य विचारधारा को स्वीकार नहीं किया। समय-समय पर जो भी उन्हें देश के लिए हितकारी लगा उस पर उन्होंने लेखनी उठायीं। अनेक प्राचीन कथाओं तथा पात्रों के माध्यम से भी उन्होंने राष्ट्रीय चेतना के विकास में योगदान किया। भक्त प्रह्लाद इत्यादि बड़ी रचनाएँ इसका उदाहरण हैं। देश का दैन्य उन्होंने देखा और समझा था। उसे

वाणी भी दी। समाज में वातावरण का निर्माण और उत्साह के साथ क्रांति की ओर बढ़ने की प्रेरणा में उनकी कविताओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

राष्ट्रीय अस्मिता के प्रखर समर्थक

सनेही ने देश-प्रेम और राष्ट्रीय चेतना के जागरण में अद्भुत योगदान दिया है। युवकों के हृदय में प्रेरणा और देश की स्वतंत्रता के लिए सबकुछ अर्पित करने की भावना उनकी राष्ट्रीय कविताओं की मुख्य विषय-वस्तु रही। अत्यंत सीधी और सरल भाषा में उन्होंने ऐसी असंख्य रचनाएँ रचीं जिनके द्वारा देशवासियों में देश-भक्ति सामाजिक दायित्व और देश की स्वतंत्रता में बड़ी-से-बड़ी क़ुर्बानी करने की इच्छा लोगों में जागी। सनेही की रचनाओं में नवजवानों के लिए बराबर ऐसी भावनाओं को बल दिया गया है। यद्यपि प्रेम, शृंगार तथा करुण-रस से भरपूर तथा साहित्यिक सौंदर्य से भरपूर रचनाओं की भी उनमें कमी नहीं है। प्रकृति और प्राकृतिक दृश्यों, अनेक ऐसे स्वरूप अपनी रचनाओं में अंकित किये हैं, जो अपने आप में द्वितीय और महत्त्वपूर्ण हैं परंतु काव्य-सौंदर्य की सम्पूर्ण विशेषताओं के रहते हुए भी सनेही ने सामाजिक जागरण का जो ऐतिहासिक कार्य किया वह उनके कवि रूप में सर्वाधिक योगदान है। जैसा हमने ऊपर कहा है कि सनेही की अभिव्यक्ति सीधी और सरल होते हुए भी बड़ी चुटीली और मर्मस्पर्शी बनकर समाज के गले की हार बनी। बिल्कुल सीधी और सरल अभिव्यक्ति के कारण उनकी राष्ट्रीय रचनाओं में काव्य-सौंदर्य की छटा कहीं-कहीं कमज़ोर हो गयी है, परंतु भावना और कर्तव्य के स्तर पर रचना सर्वग्राही बन गयी है। सनेही की भावाभिव्यञ्जना कहीं-कहीं इतनी सपाट होकर निकली है कि उन्हें कविता कम और पद्य की संज्ञा अधिक दी जा सकती है। परंतु ऐसी कमज़ोरी उनकी थोड़ी ही रचनाओं में देखने को मिलेगी। प्रायः यह कमज़ोरी उनकी उन कविताओं में देखने को मिलती है जिनमें राष्ट्रीय आंदोलन के नारों को पंक्तिबद्ध किया गया है अथवा उन रचनाओं में देखने को मिल जाती है, जिनमें उन्होंने राष्ट्रीय नेताओं के संबंध में विस्तार से लिखा है। किन्ही विशेष अवसरों पर उनकी लिखी हुई अनेक रचनाएँ ऐसी बन गयी हैं, जिनमें साहित्यिक सौंदर्य की कमी खटकती है। लेकिन इस कमी के बावजूद भी राष्ट्र-प्रेम की मार्मिकता है तथा समाज के दायित्व के प्रति व्यक्त तीव्र भावना की कसौटी पर उन रचनाओं का महत्त्व भी कम नहीं है।

जहाँ-जहाँ भी सनेही को भावना से ऊपर कर्तव्य बोध को अपनाना पड़ा है, वहीं-वहीं इस प्रकार की दुर्बलता भले ही देखने को मिल जाये, परंतु देश-प्रेम के संबंध में भी जब कुछ लिखा है तब उनके छंद और विभिन्न रचनाएँ अपनी भावुकता और मार्मिकता के कारण बहुत सुन्दर बन पड़ीं। देश के प्रति उनके प्रेम के अद्वितीय और एकांकता के लिए ये छंद देखें :

नाचा करती हैं लोचनों में पुतली-सी छवि,
सुख में हँसे हो कि फँसे हो दुख-क्लेश में।
आते दृश्य सामने अशेष, लेश रहता न,
देश-दृश्य रहता है अवशेष शेष में॥
पावन पुजारी बस एक देश देवता के,
चाहे जिस पंथ में हों चाहे जिस वेश में।
हृदय-प्रदेश में बसा ही रहता है देश,
देश में बसे हों कि बसे हों परदेश में॥

इसी प्रकार की उनकी देश-भक्ति की रचनाएँ उपलब्ध हैं। जहाँ भी उन्होंने राजनीतिक आंदोलन को वाणी देने का प्रयास किया है वहीं काव्य-सौंदर्य के न्यूनतम भले ही हो गया हो, परंतु वैचारिक प्रचुरता तथा देशवासियों से अपील के रूप में प्रभावी रचना अवश्य बनी है। इस तरह की उनकी अनेक ऐतिहासिक रचनाओं को गिनाया जा सकता है। जैसे महात्मा गाँधी के 1921 के असहयोग आंदोलन को वाणी दी। जो बिल्कुल सीधे कर्तव्य बोध के रूप में नागरिकों से कही गयी हैं। उदाहरण के लिए :

असहयोग कर दो। असहयोग कर दो॥
कठिन है परीक्षा न रहने क़सर दो,
न अन्याय के आगे तुम झुकने सर दो।
गँवाओ न गौरव नये भाव भर दो,
हुई जाति बेपर है तुम इसको पर दो॥
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो॥
हृदय चोट खाये दबाओगे कब तक,
बने नीच यों मार खाओगे कब तक,
तुम्हीं नाज़ बेजा उठाओगे कब तक,
बँधे बन्दगी यों बजाओगे कब तक।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो॥

इसी तरह 'साम्यवाद' शीर्षक कविता के एक अंश को उद्धृत किया जा सकता है :

कुछ भूखों मर रहे महा तनु शीर्ण हुआ है,
कुछ इतना खो गये कि घोर अजीर्ण हुआ है।

कैसा यह वैषम्य-भाव अवतीर्ण हुआ है,
जीर्ण हुआ मस्तिष्क, हृदय संकीर्ण हुआ है।।
कुछ मधु पीकर मत हों, आँसू पीकर कुछ रहें।
कुछ लूटें संसार-सुख, मरते जी कर कुछ रहें।।
कुछ को मोहन-भोग बैठ कर हो खाने को,
कुछ सोवें अधपेट तरस दाने-दाने को।
कुछ तो लें अवतार स्वर्ग के सुख पाने को,
कुछ आयें, बस नरक भोग कर मर जाने को।
कुछ आनन्द-तरंग में मग्न सदा रहकर रहें।
कुछ जीवन-भर क्लेश में, हाय भाग्य ! कहकर रहें।।

इसी प्रकार राष्ट्र के महान और अपने आदर्श नेताओं पर भी इन्होंने बहुत-सी रचनाएँ की हैं। इनमें लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी, महामना मालवीय जी, जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, गणेशशंकर विद्यार्थी इत्यादि नेताओं पर उत्कृष्ट रचनाएँ की हैं परंतु कई नेताओं पर और उपर्युक्त नेताओं पर कई-कई अन्य रचनाएँ की हैं। उनमें काव्योत्कर्षता कम और उनके ऐतिहासिक कार्यों का पद्यबद्ध विवेचन अधिक है। सनेही ने अपने महत्त्वपूर्ण आख्यान कविता की रचना करते हुए यदा-कदा ऐसी ही पद्यात्मकता का परिचय दिया है। जैसे बंधु वियोग कविता में आरम्भ की ही पंक्तियाँ बिल्कुल सपाट पद्य का ही उदाहरण हैं—

हुआ जब युद्ध में बेहोश भाई,
उड़ी तब राम के मुँह पर हवाई।

लेकिन आख्यान-काव्य की तो ये दुर्बलता आवश्यक हो जाती है कि किसी प्रसंग विशेप के परिचित करने में अथवा घटना विशेष को समझाने के कारण काव्य-सौंदर्य में यदा-कदा न्यूनता हो ही जाती है। इतिवृत्तात्मक रचनाओं का वाहुल्य द्विवेदी युग में बहुत हुआ था और उस युग की ऐसी रचनाएँ फिर भी आख्यान-काव्य के रूप में अथवा प्रबंध-काव्य के रूप में हों। प्रसंगों को परिचित कराने और घटनाओं को जोड़ने के अवसर पर काव्य का सौंदर्य प्राय: कम हो जाया करता है।

सनेही की इस प्रकार की रचनाएँ इस दोष से मुक्त नहीं हैं। राष्ट्र के महान नेताओं के अतिरिक्त सनेही ने अपने साहित्यिक गुरुजनों और समकालीन उच्चकोटि के साहित्यिकों पर भी कविताएँ लिखी हैं। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', नाथूराम शर्मा 'शंकर', प्रेमचंद, रवींद्र-नाथ ठाकुर, महाकवि निराला इत्यादि कृती महापुरुषों पर भी उन्होंने कविताएँ लिखीं। साहित्यिक महापुरुषों पर लिखी गयीं उनकी सभी रचनाएँ काव्य-सौंदर्य

की उत्कृष्ट रचना नही कही जा सकती, लेकिन अपने किसी-न-किसी गुण विशेष के कारण साहित्यिक महापुरुषों पर लिखी गयी उनकी सभी रचनाएँ किसी-न-किसी विशेषता के कारण महत्त्वपूर्ण मानी जाएँगी। किंतु काव्य-सौंदर्य के साथ कविता के उच्च प्रतिमानों को देखते हुए आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी पर लिखी गयी रचना शोक रचनाओं में सर्वोत्तम कही जा सकती है। अन्य प्रभावी रचनाओं में राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', और निराला पर लिखी गयी शोकांजलियाँ अपनी मार्मिकता के लिए सदैव स्मरण की जाएँगी।

सनेही ने सदैव कविता का लक्ष्य किसी बड़े उद्देश्य को सामने रखकर लिखना ही माना है और अपनी आरम्भिक ब्रजभाषा की रचनाओं को छोड़कर, जिसमें उनके प्रारम्भिक काल की रीतिकालीन परम्परा उनकी कविताओं में पूरी तरह से विद्यमान है, के अलावा उन्होंने आधी शताब्दी तक जो कुछ भी लिखा उसका अभिप्रेत मुख्यतः सामाजिक उन्नति, राष्ट्र-प्रेम, आर्थिक न्याय और मानव के प्रति मानव की सद्‌भावना ही रहा है। सामाजिक कल्याण और समाजोपयोगी विषयों का चयन और उसकी सटीक और मार्मिक अभिव्यक्ति उनकी कविता का लक्ष्य बना रहा। अपने 89 वर्ष के जीवन में अंतिम चार-पाँच वर्ष अस्वस्थता के कारण उन्होंने बहुत कम लिखा और अपने जन्म के बाद युवक होने पर जबकि उन्होंने काव्य-क्षेत्र में प्रवेश किया—यदि ये वर्ष उनकी लम्बी आयु में से निकाल दें तो लगभग साठ वर्ष तक काव्य-रचना के क्षेत्र में उन्होंने बड़े प्रभावशाली ढंग से कार्य किया। हम ऊपर बता चुके हैं कि वे छंदोबद्धता के प्रबल पक्षधर थे। कविता के विषय में उनकी धारणा कोरी कल्पना न होकर यथार्थ जीवन से जुड़ी हुई थी। वे कविता को केवल विलास नहीं मानते थे। बल्कि इसे सामाजिक शिक्षा का एक सबसे बड़ा माध्यम भी मानते थे। उनकी यह स्पष्ट धारणा थी कि कविता केवल विलास नहीं है और मनोरंजन की वस्तु उसी रूप में है जबकि वह समाज को सुख, शांति, सद्‌भावना, प्रेम, भक्ति और राष्ट्र और मानव की सेवा के लिए कोई संदेश भी प्रदान करे। इस दृष्टिकोण को उन्होंने अपनी कविताओं में बराबर बनाये रखा है। लगभग पचास वर्षों तक उन्होंने हिन्दी कविता का एक विशिष्ट मार्गदर्शन बिना किसी नेतृत्व के किया। उस आधी शताब्दी में उनकी सक्रियता की जो उपलब्धियाँ हैं वे हिंदी कविता की विषय-वस्तु, भाषा, संस्कार और शास्त्र—इन सभी दृष्टियों से काव्य को सशक्त बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। अपनी विराट कवि-मण्डली का निर्माण करके उन्होंने कवि सम्मेलनों की परम्परा डाली और सर्वसाधारण में हिंदी कविता के प्रति रुचि पैदा की तथा हिंदी कविता को लोकप्रिय बनाने का ऐतिहासिक कार्य किया। कवि-सम्मेलनों तथा अपने द्वारा सम्पादित मासिक पत्र 'सुकवि' में समस्या पूर्तियों का जो आंदोलन उन्होंने चलाया, उससे भी हिंदी ·विता के चमत्कार तथा काव्य-प्रतिभा के निखार का भाव सम्पन्न हुआ। स्वयं

सनेही जी ने बहुत ही प्रभावी समस्या-पूर्तियाँ अपने छंदों के द्वारा की है। सूर्य है, न चन्द है, मन की आये हैं—कृपान की इत्यादि समस्याओं की पूर्तियाँ सनेही जी ने जिन छंदों के द्वारा की हैं वे मार्मिक और महत्त्वपूर्ण हैं और इन्हीं समस्याओं की पूर्तियाँ उनके विराट कवि मण्डल ने जिन सुन्दर छंदों में की हैं वह हिन्दी छंद-परम्परा का रोचक इतिहास ही कहा जा सकता है। सनेही जी ने खड़ी बोली हिन्दी का जिस प्रकार से परिष्कार किया, वह बड़ा महत्त्वपूर्ण है। सरल और बामुहावरा भाषा तथा सफ़ाई, सनेही कवि मण्डल की एक दूसरी ऐसी विशेषता है, जिसका विकास उनके समकालीन छायावाद में तो नहीं परंतु उत्तरकाल के प्रगतिवादी काव्य पर अवश्य पड़ा। छायावाद की कृत्रिम भाषा तथा कल्पना विलास काव्य-वस्तु को वे कभी भी अपना समर्थन नहीं दे सके।

सनेही उर्दू और फ़ारसी के भी बहुत अच्छे जानकार थे इसीलिए एक ओर जहाँ उन्होंने हिन्दी के परिनिष्ठित स्वरूप को बढ़ावा दिया वहीं पर उर्दू-हिन्दी मेल से बनी और महात्मा गाँधी जी की भावनाओं के कारण सरल हिंदुस्तानी में बहुत-सी रचनाएँ कीं। उनकी बहुत-सी उर्दू रचनाएँ भी है जिन्हें सरल नहीं कहा जा सकता, परंतु जो अपनी मार्मिकता, बेधक दृष्टिकोण और देशभक्त की प्रखरता के कारण देश पर शहीद होनेवाले शहीदों के कंठों का भी हार बनीं। देश-प्रेम के मत-वाले वर्षों जेलों की कोठरियों में राजद्रोह में आजीवन सज़ा पाये जानेवाली, काले-पानी की सजा काटनेवाले क़ैदी और फाँसी का फंदा हँस-हँसकर अपने गले में पहननेवाले अमर शहीदों ने सनेही की उन उर्दू और हिन्दी की रचनाओं को अकेले और समवेत रूप में गाया है। उर्दू की इन ऐतिहासिक रचनाओं में 'यादे वतन', 'ख्याले वतन', 'शैदाए वतन' जैसी लम्बी रचनाएँ तथा अन्य बहुत-सी ग़ज़लें तथा छंदों के नाम गिनाये जा सकते हैं।

सनेही की सम्पूर्ण सहानुभूति प्रत्येक देश के लिए समर्पित नौजवानों, किसानों, मजदूरों तथा दलितों और पतितों के प्रति रही है। श्रम की पूजा, शक्ति की पूजा और समाज के लिए तिल-तिलकर गलनेवाले तथा अपना खून-पसीना बहानेवाले प्रत्येक वर्ग इकाई के प्रति सनेही का आकर्षण-केंद्र रहा और इसीलिए सनेही ने अपनी सम्पूर्ण रचना-प्रक्रिया को सामाजिक और मानवीय बनाये रखने का जो प्रयत्न किया, वही सबसे बड़ा अवदान है। उन्होंने अपनी रचनाओं को कालजयी बनाने के बजाए इतिहासबोध तथा यथार्थ की भूमि से जोड़कर उन्नति के मार्ग पर बढ़ने का प्रयत्न अधिक किया।

सनेही ने राष्ट्रीय-चेतना का और राष्ट्रीय स्वतंत्रता के संघर्ष का तो मार्मिक वर्णन अपने काव्य में किया है साथ ही, विश्व के आधुनिक मानववादी आंदोलन की भूमिका से भी अपनी आँखें बंद नहीं रखीं। सन् 1917-18 में रूसी क्रांति पर और मार्क्सवादी चिंतन पर भी उनकी दृष्टि गयी और तभी अपनी कविता को

अनुरूप स्वर प्रदान किया। अफ्रीकी राष्ट्रों में कालों के विरुद्ध गोरों के अत्याचार को भी उन्होंने वाणी दी। कुली-प्रथा तथा प्रवासी भारतवासियों की समस्याओं पर भी उनकी निगाहें गयीं और कुली-प्रथा, गिरमीटिया और उन अभागे भारत-वासियों की व्यथा-कथा को भी उन्होंने अपनी कविता में जगह दी, जो अंग्रेज़ी साम्राज्य की ग़लत नीतियों के कारण देश छोड़कर विदेशों में कष्ट उठा रहे थे।

सनेही विश्व मानव की उस आंदोलनकारी भूमि से लगातार जुड़े रहे और जिसका एहसास पश्चिमी देशों को कराते रहते थे। दुख, पीड़ा, कष्ट, अन्याय, अत्याचार और सारी विषमताओं के होते हुए भी सनेही का आशावादी दृष्टिकोण कभी तिरोहित नहीं हुआ। रूसी क्रांति और मार्क्सवादी दृष्टिकोण का समर्थन करने के बावजूद वे मार्क्सवादी नहीं हुए। स्वयं कष्टों और विपन्नता के अनेक कष्ट भोगने के बावजूद टूटे और बिखरे नहीं। अपनी ही आँखों से अपने देश में फैली हिंसा सांप्रदायिकता और रूढ़िवादिता के वे कभी शिकार नहीं हुए। परम आस्तिक होने के बावजूद उनका दृष्टिकोण, समदर्शी और सर्वधर्म-समभाव का था। वे किसी सम्प्रदाय के पक्षधर थे न प्रचारक। उनका एक ही पक्ष था शुद्ध राष्ट्र-प्रेम और उनकी पूजा के लिए कोई देवता था तो वह था मानव। व्यक्तिगत जीवन में वे अहंकारी और अभिमानी भी नहीं थे, परंतु उनमें स्वाभिमान कूट-कूटकर भरा हुआ था और यही दृष्टि उनकी कविता में तथा उनके जीवन में सर्वत्र बिखरी दिखायी पड़ेगी। उनके विपुल रचना संसार में आधुनिक युग के राष्ट्रीय, अंत-र्राष्ट्रीय, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थितियों का पद-पद पर दर्शन किया जा सकता है और ख़ुद सनेही ने अपने बारे में जो दो छंद लिखे हैं, उसमें उनका चरित्र और व्यक्तित्व भी रेखांकित हो जाता है। उन दोनों छंदों को यहाँ उद्धृत करना प्रासंगिक होगा। उसमें पहला छंद उन्होंने अपनी 75वीं वर्षगाँठ के अवसर पर आयोजित समारोह के अवसर पर लिखकर पढ़ा था :

विश्व में विचारों के विचरता रहा विवश,
बस गया वहीं पै रहा न मन बसका।
कंठों में विराजा रसिकों के फूल-माल हो के,
कुटिल कलेजों में त्रिशूल होके कसका॥
धाराधर विपदा के बरसे सहस्र धार,
तो भी मेरा धीरज-धाराधार न धसका।
चसका वहीं है नव रसका सनेही अभी,
टसका नहीं मैं हूँ पछत्तर बरस का॥

इस छंद में सनेही ने अपने 'सनेही' और 'त्रिशूल' दोनों ही कवि रूपों के बारे में अपनी भूमिका को रेखांकित किया है और साथ ही विचारों की विश्वात्मकता

तथा उसकी प्रतिभूति होकर अपने कार्यवृत्ति की बहुत ही संक्षिप्त चर्चा की है। इसी छंद में अपने निजी जीवन में विपत्तियों के संबंध में उन्होंने बहुत हल्का-सा पुट देकर अपने कवि कर्म को सर्वोत्तम बताते हुए अपनी 75 वर्ष की आयु में भी उसी तेवर का परिचय दिया है, जिसका नेतृत्व उन्होंने 50-60 वर्ष तक अपने कविकर्म के द्वारा किया था।

दूसरा छंद जो यहाँ उद्धृत किया जा रहा है उन्होंने उस समय लिखकर पढ़ा था जब वे अस्पताल की रोग-शय्या पर उपचार करा रहे थे। उनके मित्रों और भक्तों ने कानपुर में एक विराट अभिनंदन समारोह आयोजित करके उस समारोह में लाकर सम्मानित किया था। विद्वानों के भाषण तथा उनके प्रति श्रद्धा-निवेदन के भाव व्यक्त करने के बाद जब सनेही जी से कुछ कहने का निवेदन किया गया तो उन्होंने यह छंद पढ़कर सुनाया—

मित्र-मित्र ही हैं, नही कोई भी अमित्र मेरा,
मित्रता जहाँ हो वहाँ काम क्या उदासी का।
ताक-ताक कर ऐसे व्यंग्य-बाण छोड़े मैंने,
फोड़ दिया भण्डा झूठी पालिसी सियासी का।
मेरा प्रियतम बसा मेरे मन-मन्दिर में,
बंदा हुआ बंदा कभी काबा का न काशी का।
रसे-रसे रस में सनेही मैं सरस हुआ,
बरस रहा हूँ रस बरस बयासी का।।

इस छंद को पढ़ने के बाद सनेही जी ने हँसकर बताया कि इस छंद की तुक मैंने ऐसी रखी है कि इसकी अंतिम पंक्ति नवासी वर्ष तक बदलने की जरूरत नहीं पड़ेगी और शायद वे अपना भविष्य ही बता रहे थे क्योंकि छंद की अंतिम पंक्ति जिसमें बरस बयासी का लिखा गया है वह बरस नवासी तक भी चल सकता था और विधि की विडम्बना देखिये कि सनेही जी की मृत्यु नवासी वर्ष की अवस्था में 20 मई 1972 में उसी उर्सला हार्समेन अस्पताल कानपुर में हो गयी, जहाँ पर वह कई वर्ष अपने रुग्णता के कारण एक कमरे में चिकित्सा करा रहे थे।

सनेही की मृत्यु हिन्दी के एक कवि की मृत्यु ही नहीं थी बल्कि हिन्दी-कविता के एक युग की समाप्ति थी। उन्हें अपने जीवन में मित्रों, अनेक भक्तों और असंख्य हिन्दी साहित्य-प्रेमियों का आदर प्राप्त हुआ। कानपुर म्युनिसिपल कारपोरेशन ने उनका सार्वजनिक नागरिक अभिनंदन करके एक विशाल अभिनंदन-ग्रंथ भेंट करके सम्मानित किया था। कानपुर के विश्वविद्यालय ने इन्हें डी. लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत करके सम्मानित किया। उत्तर प्रदेश सरकार ने वर्षों उनकी रुग्णावस्था की चिकित्सा में बहुत अच्छी व्यवस्था की और उत्तर प्रदेश हिन्दी

संस्थान ने उनकी आजीवन हिन्दी सेवा के लिए सम्मान राशि पुरस्कार से सम्मानित किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने अपनी सर्वोच्च उपाधि साहित्य वाचस्पति से अलंकृत करके उन्हें सम्मानित किया। सनेही जी ने पूर्ण जीवन जीया और अपने जिस उद्देश्य के लिए उन्होंने जीवन अर्पित किया था उस राष्ट्र की स्वतंत्रता भी अपने सामने देख ली। वे अतीत में खोये रहनेवाले व्यक्ति न थे, न भविष्य के कल्पना-लोक में विचरण करते थे। वे वर्तमान को महत्त्व देनेवाले कृती-कवि थे और इसीलिए 1920 में जब दैनिक वर्तमान प्रकाशन हुआ तो उन्होंने उसके आदर्श वाक्य (मोटो) के तौर पर निम्न पंक्तियाँ लिखी थीं—

शानदार था भूत भविष्यत भी महान है,
अगर सम्भालें आप उसे जो वर्तमान है।

सनेही मंडल

सनेही जी के कृतित्व में सनेही मंडल को जोड़े बिना सही मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। सनेही जी ने भाषा परिष्कार का काम किया हो, चाहे देश-भर में कवि सम्मेलनों के माध्यम से हिन्दी कविता को लोकप्रिय बनाने का काम किया हो, समाज सुधार, राजनैतिक चेतना और दैन्य के विरुद्ध आक्रोश जगाने का काम किया हो; चाहे तिलक और गाँधी की बलिदानी परम्परा का प्रचार किया हो, राष्ट्र के महान नेताओं के चरित्र का गुणगान किया हो, चाहे कृषकों, मजदूरों की दीनता का चित्र खींचा हो, चाहे दहेज की वेदी पर वलिदान होनेवाली कन्याओं की पीड़ा को उजागर किया हो, सभी दिशाओं में सनेही मंडल के कवियों का योग रहा। हिन्दी काव्यधारा में 'हालावाद' के विरुद्ध 'विजयावाद' का आन्दोलन सनेही और उनके मंडल की ही देन है। जहाँ राष्ट्रीय काव्यधारा के हिन्दी कवियों की बड़ी संख्या में सर्वाधिक कवि सनेही मंडल के निकलेंगे, वहाँ 'हितैषी', अनूप शर्मा, बृजभूषण लाल त्रिपाठी 'निश्चल', स्वामी नारायणनन्द 'अख़्तर', अभिराम शर्मा, प्रणयेश, तरल, सेवकेन्द्र, राधाबल्लभ पाण्डेय 'बन्धु', रामजीदास कपूर इत्यादि अनेक कवि सनेही-मण्डल के रत्न हैं, जिन्होंने साहित्यिक श्रेष्ठता की रक्षा की है। जगदम्बा प्रसाद मिश्र 'हितैषी' की 'मातृगीता' और अभिराम शर्मा की 'मुक्तसंगीत' नाम कृति भी ब्रिटिश सरकार द्वारा ज़ब्त कर ली गयी थी। अनूप शर्मा की ओजस्वी रचनाओं में मुर्दों में जान डाल देनेवाली शक्ति होती थी। सर्वश्री निश्चल एवं बन्धु बालेन्दु इत्यादि कवियों ने राष्ट्रीय काव्यधारा को समृद्ध किया था। कानपुर के राष्ट्रीय कविता लिखनेवालों पर सनेही जी का प्रभाव बहुत गहरा पड़ा है। यह भी स्मरणीय है कि जो कवि सनेही जी से किसी तरह नहीं जुड़े, वे भी इस दिशा में उनसे प्रेरित और प्रभावित हुए। राजाराम शुक्ल 'राष्ट्रीय आत्मा', पं. मुंशीराम शर्मा 'सोम', अवधेश मालवीय, करुणेश, छैलबिहारी दीक्षित 'कंटक' इत्यादि ऐसे ही राष्ट्रीय धारा के प्रमुख कवि हैं। हमने बताया है कि सनेही जी के मंडल में उनका शिष्यत्व स्वीकार करनेवालों के अतिरिक्त आचार्य बचनेश सनेही जी से उम्र में बड़े थे और सशक्त छन्द लेखक थे। यही बात पं. रूपनारायण पाण्डेय पर भी लागू होती है। इन दोनों की काव्य-प्रतिभा का परिचय हिन्दी

जगत को भलीभाँति है। बचनेश मिश्र जी बड़े ही प्रौढ़ और प्रतिभावान कवि थे। उदाहरण के लिए इनका एक छन्द उद्धृत है :

ओसकण

वे निकले कड़ी सीपियों से, यह कोमल पल्लवों पे पले मोती।
वे बिन बेधे निकाम हैं, ये विधते नहीं, बेधे बिना भले मोती।
वे बिकते, अनमोल हैं ये, मन मोल दे केवल देख ले मोती।
ऊपरी पानिप हैं उनमें, पर ये निरे पानिप के ढले मोती।।

पं. रूपनारायण पाण्डेय की एक घनाक्षरी नीचे उद्धृत की जा रही है :

भीतर छिपाये हैं बियोग बड़वानल ये,
खारी जल-राशि से भरी हुई अगम हैं।
देखने को मुखचन्द्र उमड़-उमड़ पड़े,
छोड़े मर्यादा नहीं ऐसी अनुपम हैं।
लाज के जहाज डूबे इनमें अनेक, नहीं—
थाह इनकी है, राहें इनकी विषम हैं।
गागर में सागर भरा है इन आँखों में ही,
आँखें बिरही की नहीं सागर से कम हैं।।

× × ×

परन्तु छन्दोबद्ध काव्यधारा का नेतृत्व जब सनेही जी ने अपने हाथों में लिया तब उनके अनुवर्ती, समवर्ती और कुछ अग्रवर्ती भी उनके मंडल के रत्न बन गये। राष्ट्र की समस्याओं के अतिरिक्त शुद्ध कला सौष्ठव की प्रतिष्ठा भी सनेही मंडल के कवियों ने की थी। छायावाद की कोमलकान्त पदावली के समानान्तर हिन्दी के पुराने छन्द घनाक्षरी और सवैया में उसी प्रकार भावराशि का प्रस्फुटन सनेही मंडल के कवियों में भरपूर देखा जा सकता है। हितैषी, अनूप, रसराज नागर, रामकुमार वर्मा, अभिराम, प्रणयेश, श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल', डॉ. जगदीश गुप्त इत्यादि अनेक प्रमुख कवि हैं जिन्होंने अपने छन्दों में साहित्य की नयी चेतना को प्रस्फुटित किया। स्वच्छ एवं प्रांजल भाषा, छन्द-संयोजन और विषय-वस्तु की दृष्टि से जो अनोखे और अद्वितीयता के द्योतक हैं, हितैषी जी के छन्दों में यह प्रभाव बहुत व्यापक और ऐतिहासिक महत्त्व की सीमा तक पहुँचा। उदाहरण के लिए हितैषी के किरण पर लिखा छन्द प्रस्तुत है :

दुखिनी बनीं दीन कुटी की कभी, महलों की कभी महारानी बनी।
बनीं फूटती ज्वालामुखी तो कभी, हिम कूट की देवि हिमानी बनी।

चमकी बन विद्युत रौद्र कभी, घन आनन्द अश्रु कहानी बनी।
सविता शशि स्नेह सुहाग सनी, कभी आग बनी कभी पानी बनी।।

× × ×

यथार्थ की सत्यता का चित्रण भी काव्य-कला की उच्चता को बनाये रखकर आपने किया है। गहरी समवेदना और सूक्ष्म विश्लेषण के दर्शन होते हैं।

हितैषी जी ने प्रकृति और प्रेम के अतिरिक्त ही दर्शन के स्तर तक खड़ी बोली हिन्दी छन्द की काव्य-परम्परा को पहुँचाने में अपने काव्यगुरु सनेही जी से बढ़कर काम किया था। कोमलता-कमनीयता में हितैषी अद्वितीय हैं तो ओज और उत्साह में अनूप शर्मा बेजोड़ हैं। अनूप शर्मा की विशेषता देखें :

'भूले-भटकों को भगवान ही बताये पथ',
मुख से निवेदन कढ़ा यो धर्म-धीरा के।
छलक रहा था रंग, झलक रहा था श्याम,
लोचन लुभावे श्यामसुरति अधीरा के।
चित्त में अनूप जन्म-जन्म की पुराकृति का,
जाग उठा ज्ञान, ज्ञान गहन गंभीरा के।।

सनेही-मंडल के अन्य कतिपय शिष्यों के छन्द भी महत्त्वपूर्ण रहे हैं। जिनमें भाषा, भाव, उक्ति चमत्कार और भाव-प्रवणता का परिचय मिलता है। सनेही मंडल के कवियों में प्राचीन परम्परा और नयी दृष्टि दोनों का ही समन्वय मिलता है। सनेही के आचार्यत्व की छाप भी उनमें देखी जा सकती है।

सनेही जी के 'विजयावादी' आंदोलन में स्वयं सनेही जी के अलावा सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कविताएँ लिखनेवाले कवि अभिराम शर्मा और प्रणयेश हैं। इनके अलावा सनेही मंडल के कुछ कवियों ने फुटकर कविताएँ बहुत लिखी हैं लेकिन बेहद फ़क्कड़ाना अंदाज़ में। जिस मस्ती के साथ अभिराम शर्मा और प्रणयेश ने विजया पर जितना अधिक और सुन्दर लिखा उतना कम लोगों ने लिखा होगा। हालावाद के कविरूप में कविवर बच्चन जी का नाम बहुत प्रसिद्ध है परन्तु स्वयं बच्चन जी ने भी लिखा है कि वे हालावाद के प्रवर्तक नहीं है। उन्होंने प्रवर्तक के रूप में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का नाम लिया है। नवीन जी बड़े ही मस्त और फ़क्कड़ कवि थे। बच्चन जी ने लिखा है कि 'साक़ी अब कैसा विलम्ब ढलवा दे तन्मयता हाला' वाली कविता से हालावाद का आरम्भ हुआ। परन्तु नवीन जी और भगवतीचरण वर्मा ने बच्चन की मस्ती और फ़क्कड़ाना अंदाज़ में इस प्रकार की दस-पाँच कविताएँ ज़रूर लिखी थीं परन्तु साक़ी, शराब का जैसा प्रचार बच्चन की कविताओं में मिला, वैसा अन्य किसी में नहीं। नयी पीढ़ी में साक़ी, मय और मयख़ाना का रंग गहराते देखकर सनेही मंडल के अभिराम और प्रणयेश की जोड़ी

विजया के लिए प्रसिद्ध हो गयी।

भर दे गिलास भर दे गिलास।
आया बसन्त आया बसन्त।।
रँग गये रंग में दिग दिगन्त,
विजया घट भर लाया बसन्त।।
बौरे रसाल फूले पलाश।
भर दे गिलास भर दे गिलास।
भर दे विजया के विमल कूप,
पी जायें जहाँ सब रंग भूप।
सब भूल-भूल निज रंग रूप,
हो एक रूप अच्युत अनूप।।
कोई न नाथ कोई न दास,
भर दे गिलास, भर दे गिलास।।

और प्रणयेश कवि की विजया पर लिखी घनाक्षरी को बड़ी प्रसिद्धि मिली। प्रणयेश का विजया पर लिखे अनेक छन्दों में से एक यहाँ उद्धृत किया जा रहा है :

ऐसा रंग आया है, गगन रजताभपूर्ण,
देखता हूँ रेणु राशि हीरक कनी हुई।
कुन्द कलियों ने छिटकाया है मधुर हास,
कल कौमुदी की मंजु चादर तनी हुई।
'प्रणयेश' रंग लहरा के रस प्रांगण में,
नभ किरणें है अभिसारिका बनी हुई।
नौका अपनी है, तटिनी है, सजनी है संग,
राका रजनी है और विजया छनी हुई।।

प्रणयेश ने छन्दों के माध्यम से कुछ मार्मिक बात की है।

सनेही मंडल के प्रमुख कवियों में श्री श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' का प्रमुख स्थान रहा है। उनकी काव्य-रचनाएँ प्रभावपूर्ण होने के साथ-साथ मधुर भाव-लहरियाँ और प्रकृति के साथ बहती हुई दिखायी देती हैं। सवैया छन्द के वे विशेषज्ञ थे। उनका एक छन्द उद्धृत है :

बड़ी आतुरता से पयोनिधि ने, अविराम स्वरों से पुकारा मुझे।
मिला साथ मुझे मँझधार का, और दिया लहरों ने सहारा मुझे।।
तट तो है विराम विवेकियों का, अविवेकी अथाह है प्यारा मुझे।
गति मेरी प्रवाह के साथ चली, बहा ले चली जीवन धारा मुझे।।

रसराज नागर भी सनेही मंडल के शीर्षस्थ कवियों में स्थान रखते थे, उनकी

काव्य-रचना का एक सुन्दर छन्द उद्धृत है :

परवानों से पूछा कि क्यों खुद ही,
अपने को फिजूल तबाह करे।
यह दीपक आपका दाह करे,
मुँह से पर आप न आह करें।
कहने लगे वे सुनिये 'रसराज',
न यों करुणा की निगाह करें।
मरने का मज़ा हम जानते है,
फिर जीने की क्यों परवाह करें।

वृजभूषण लाल त्रिपाठी 'निश्चल' भी सनेही मंडल के राष्ट्रप्रेमी कवियों में सक्रिय लिखनेवाले रहे हैं। आपने भारत-अर्चना कर, उसकी महानता का गुणगान करने में ही अपनी सरस वाणी का उपयोग किया। एक छन्द उद्धृत है :

भारत के भाग्य रूप भारती से वर प्राप्त,
भक्ति के भवन भरपूर हुए तुलसी।
तीन सौ से अधिक व्यतीत हुए वर्ष तो भी,
हिन्द के हृदय से न दूर हुए तुलसी।
भय-व्याधि पीड़ित असाध्य रोगियों के लिए,
सुन्दर संजीवनी की मूर हुए तुलसी।
शशि हुए सुजन चकोर मन रंजन को
मोहतम भंजन को सूर हुए तुलसी॥

सनेही जी ने स्वयं बहुत से सुन्दर गीतों की भी रचना की। सनेही के गीतों में यदाकदा रसात्मकता की न्यूनता भी देखने को मिल जाती है परन्तु जिन गीतों की रचना उन्होंने मनोयोग से की है, ऐसे बहुत से गीत अत्यन्त मुग्धकारी हैं। प्रकृति सौंदर्य, रहस्यानुभूति और प्रेमाकुलता वाले गीत अत्यन्त सुन्दर बन गये हैं :

तू है गगन विस्तीर्ण तो मैं एक तारा क्षुद्र हूँ

× ×

मीठे मीठे बोल सनेही

× ×

झूम झूम बरसी रे बदरिया

जैसे गीत इसके प्रमाण हैं। गीतों की दृष्टि से भी सनेही जी के कई प्रमुख शिष्य सर्वथा उल्लेखनीय हैं। देवेन्द्र शास्त्री, श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल', हृदयेश, प्रणयेश, अभिराम जैसे कवियों के गीत हिन्दी गीत काव्य के शृंगार कहे जा सकते हैं।

समस्या की पूर्ति सनेही मंडल की प्रमुख प्रवृत्ति रही है। साहित्यिक दृष्टि में भी वड़ा महत्त्वपूर्ण कृतित्व समस्या पूर्तियों के द्वारा हिन्दी काव्य को प्राप्त हुआ। स्वयं सनेही जी ने बड़े ही सुन्दर छन्दों का प्रणयन समस्या पूर्ति के रूप में किया है। 'मन की', 'सूर है न चन्द है', 'पानी है', 'कृपान की' इत्यादि समस्या-पूर्ति के छन्दों में उनकी काव्य-कला के दर्शन किये जा सकते हैं। सनेही द्वारा सम्पादित 'सुकवि' के प्रत्येक महीने में प्रकाशित हुए: समस्या पूर्ति के छन्द वड़े ही सरस, मार्मिक और उक्ति चमत्कार के उत्तम उदाहरण हैं। समस्या पूर्ति में देश के वड़े-छोटे अनेक कविगण भाग लेते थे और सनेही जी उन छन्दों को सुकवि में प्रकाशित करते थे। वचनेश मिश्र, शंकर जी, गोपालशरण सिंह, वृजनन्दन, निश्चल, सेवकेन्द्र, रसराज नागर, रामदेव सिंह, चन्द्रसेवक नूतन, श्रीनिधि, शील, शिव, हरिश्चन्द्र देव 'चातक', सभाजीत पाण्डेय, सीताराम मुरजेश, बृजेश, अभिराम, प्रणयेश, तरल जैसे सैकड़ों प्रसिद्ध कवि तथा अन्य नवोदित कवियों का नाम सनेही मंडल से जुड़ता है। सनेही जी की विराट शिष्य मंडली कानपुर और उसके आसपास के ज़िलों में ही नहीं सम्पूर्ण हिन्दी क्षेत्र में वड़े व्यापक रूप से फैल चुकी थी। अन्य क्षेत्रों में भी जैसे कलकत्ता, बम्बई और पंजाब के भागों तक विद्यमान रही थी। सुकवि के माध्यम से सनेही जी ने खड़ी बोली हिन्दी छन्द काव्यधारा परम्परा का बड़ा ही सशक्त और सफल नेतृत्व किया। छन्दों के संशोधनों में उनकी काव्याचार्य की झाँकी देखने को मिल सकती है।

सनेही जी ने कानपुर आने के समय से अर्थात् सन् 1921 से काव्य जगत की एक विशिष्ट धारा का नेतृत्व संभाला और सन् 1924 से 'सुकवि' के प्रकाशन-सम्पादन करने के वाद से वे उस धारा के सर्वमान्य आचार्य ही बन गये। लगभग आधी शताब्दी तक सनेही जी ने स्वयं तथा अपनी शिष्य मंडली के द्वारा खड़ी बोली हिन्दी कवियों का नेतृत्व किया। सनेही जी पर लिखित अनूप शर्मा जी के जो दो छन्द हमने अन्यत्र उद्धृत किये हैं, वे उनके कृतित्व के मूल्यांकन से सम्बन्धित हैं।

सनेही जी ने राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा गणेशशंकर विद्यार्थी से श्रद्धापूर्वक बहुत-कुछ लिया और उसमें अपनी तरफ़ से बहुत-कुछ जोड़कर एवं मिलाकर अपने शिष्यों-प्रशिष्यों से हिन्दी जगत को दे दिया तथा दिलाया। सनेही मंडल के सभी कवियों के नामोल्लेख करना भी बहुत कठिन बात है। बहुत बड़ी संख्या है इनकी। परन्तु जिन कवियों ने सनेही मंडल के रूप में हिन्दी काव्यधारा में महत्त्वपूर्ण योगदान किया उनके कुछ नामों का हमने ऊपर उल्लेख किया है।

परिशिष्ट

चयन

हमारा प्यारा हिन्दुस्तान

जिसको लिये गोद में सागर,
हिम-किरीट शोभित है सर पर।
जहाँ आत्म-चिंतन था घर-घर,
पूरब-पश्चिम दक्षिण-उत्तर।।
जहाँ से फैली ज्योति महान।
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान।।

जिसके गौरव-गान पुराने,
जिसके वेद-पुरान पुराने।
सुभट वीर-बलवान पुराने,
भीम और हनुमान पुराने।।
जानता जिनको एक जहान।
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान।।

जिसमें लगा धर्म का मेला,
ज्ञात बुद्ध जो रहा अकेला।
खेल अलौकिक एक सा खेला,
सारा विश्व हो गया चेला।।
मिला गुरु गौरव सम्मान।
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान।।

गर्वित है वह बलिदानों पर,
खेलेगा अपने प्रानों पर।
हिन्दी तेगे है सानों पर,
हाथ धरेगा अरि कानों पर।।
देखकर बाँके वीर जवान।
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान।।

असहयोग

कठिन है परीक्षा न रहने क़सर दो,
न अन्याय के आगे तुम झुकने सर दो।
गँवाओ न गौरव नये भाव भर दो,
हुई जाति बेपर है तुम इसको पर दो।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो।।
मानते हो घर-घर ख़िलाफ़त का मातम,
अभी दिल में ताजा है, पंजाब का गम।
तुम्हें देखता है खुदा और आलम,
यही ऐसे जख़्मों का है एक मरहम।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो।।
किसी से तुम्हारी जो पटती नहीं है,
उधर नींद उसकी उचटती नहीं है।
अहम्मन्यता उसकी घटती नहीं है,
रुदन सुन के भी छाती फटती नहीं है।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो।।
बड़े नाज़ों से जिनको माँओं ने पाला,
बनाये गये मौत के वे निवाला।
नहीं याद क्या बाग़े जलियाँवाला,
गये भूल क्या दाग़े जलियाँवाला।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो।।
ग़ुलामी में क्यों वक़्त तुम खो रहे हो,
जमाना जगा हाय तुम सो रहे हो।
कभी क्या थे पर आज क्या हो रहे हो,
वही वेल हर बार क्यों बो रहे हो।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो।।

हृदय चोट खाये दबाओगे कब तक,
बने नीच यों मार खाओगे कब तक।
तुम्हीं नाज़ बेजा उठाओगे कब तक,
बँधे बन्दगी यों बजाओगे कब तक।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो।।

नजूमी से पूछो न आमिल से पूछो,
रिहाई का रास्ता न कातिल से पूछो।
ये है अक़्ल की बात अक़्ल से पूछो,
तुम्हें क्या मुनासिब है ख़ुद दिल से पूछो।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो।।

ज़ियादा न ज़िल्लत गवारा करो तुम,
ठहर जाओ अब वारा-न्यारा करो तुम।
न शह दो; न कोई सहारा करो तुम,
फँसो पाप में मत, किनारा करो तुम।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो।।

दिखाओ सुपथ जो बुरा हाल देखो,
न पीछे चलो जो बुरी चाल देखो।
कृपा-कुंज में जो छिपा काल देखो,
भरा मित्र में भी कपट जाल देखो।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो।।

सगा बन्धु है या तुम्हारा सखा है,
मगर देश का वह गला रेतता है।
बुराई का सहना बहुत ही बुरा है,
इसी में हमारा तुम्हारा भला है।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो।।

धराधीश हो या कि धनवान कोई,
महाज्ञान हो या कि विद्वान कोई।

उसे हो न यदि राष्ट्र का ध्यान कोई,
कभी तुम न दो उसको सम्मान कोई।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो ।।

अगर देश ध्वनि पर नहीं कान देता,
समय की प्रगति पर नहीं ध्यान देता।
वतन के भुला सारे एहसान देता,
बना भूमि का भार ही जान देता।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो ।।

उठा दो उसे तुम भी नज़रों से अपनी,
छिपा दो उसे तुम भी नज़रों से अपनी।
गिरा दो उसे तुम भी नज़रों से अपनी,
हटा दो उसे तुम भी नज़रों से अपनी।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो ।।

न कुछ शोरगुल है मचाने से मतलब,
किसी को न आँखें दिखाने से मतलब।
किसी पर न त्योरी चढ़ाने से मतलब,
हमें मान अपना बचाने से मतलब।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो ।।

कहाँ तक कुटिल क्रूर होकर रहेगा,
न कुटिलत्व क्या दूर होकर रहेगा।
असत् सत् में सत् शूर होकर रहेगा,
प्रबल पाप भी चूर होकर रहेगा।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो ।।

भुला पूर्वजों का न गुणगान देना,
उचित पाप पथ में नहीं साथ देना।
न अन्याय में भूलकर हाथ देना,
न बिष-वेलि में प्रीति का पाथ देना।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो ।।

न उतरे कभी देश का ध्यान मन से,
उठाओ इसे कर्म से मन-वचन से।
न जलाना पड़े हीनता की जलन से,
वतन का पतन है तुम्हारे पतन से।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो।।

डरो मत नहीं साथ कोई हमारे,
करो कर्म तुम आप अपने सहारे।
बहुत होंगे साथी सहायक तुम्हारे,
जहाँ तुमने प्रिय देश पर प्राण वारे।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो।।

प्रबल हो तुम्हीं सत्य का बल अगर है,
उधर गर है शैतान ईश्वर इधर है।
मसल है कि अभिमानी का नीचा सर है,
नहीं सत्य की राह में कुछ ख़तर है।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो।।

अगर देश को है उठाने की इच्छा,
विजय-घोष जग को सुनाने की इच्छा।
व्रती हो के कुछ कर दिखाने की इच्छा,
व्रती बन के व्रत को निभाने की इच्छा।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो।।

अगर चाहते हो कि स्वाधीन हों हम,
न हर बात में यों पराधीन हों हम।
रहें दासता में न अब दीन हों हम,
न मनुजत्व के तत्त्व से हीन हों हम।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो।।

न भोगा किसी ने भी दुख-भोग ऐसा,
न छूटा लगा दास्य का रोग ऐसा।

मिले हिन्दू-मुसलिम लगा योग ऐसा,
हुआ मुद्दतों में है संयोग ऐसा।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो।।
नहीं त्याग इतना भी जो कर सकोगे।
नहीं मोह की जो नहीं तर सकोगे।
अमर हो के जो तुम नहीं मर सकोगे,
तो फिर देश के क्लेश क्या हर सकोगे।
असहयोग कर दो।
असहयोग कर दो।।

शैदाए वतन

हम भी दिल रखते हैं सीने में जिगर रखते हैं,
इश्क़ो सौदाय वतन रखते हैं, सर रखते हैं।
माना यह ज़ोर ही रखते हैं न ज़र रखते हैं,
वलवला जोशे-मुहब्बत का मगर रखते हैं।
कंगूरा अर्श का आहों से हिला सकते हैं,
खाक़ में गुम्बदे-गरदूं को मिला सकते हैं।।
शौक़ जिनको हो सताने का सताए आयें,
रू-ब-रू आके हों, यों मुँह न छिपाये, आयें।
देख ले मेरी वफ़ा आयें, जफ़ायें आयें,
दौड़कर लूँगा बलायें मैं बलाए आयें।
दिल वह दिल ही नही जिसमें कि भरा दर्द नहीं,
सख्तियाँ सब्र से झेले ने जो वह मर्द नहीं।।
फँसे हैं पर किसी लेली के गिरिफ़्तार नहीं,
कोहकन है किसी शीरीं से सरोकार नहीं।
ऐसी बातों से हमें उन्स नहीं, प्यार नहीं,
हिज्र के वस्ल के क़िस्से हमें दरकार नहीं।
जान है उसकी पला जिससे यह तन अपना है,
दिल हमारा है बसा उसमें, वतन अपना है।।

यह वह गुल है कि गुलों का भी बकार इससे है,
चमन दहर में यक ताजा बहार इससे है।
बुलबुले दिल को तसल्ली ओ' करार इसके है,
बन रहा गुलचीं की नजरों मे यह खार इससे है।
चर्ख-कजबाज़ के हाथों से बुरा हाल न हो,
यह शिगुफ्ता रहे हरदम, कभी पामाल न हो।।
आरजू है कि उसे चश्मए जर से सींचे,
बन पड़े गर तो उसे आवे-गुहर से सींचे।
आवे हैवां न मिले दीदये तर से सींचे,
आ पड़े वक़्त तो बस ख़ूने जिगर से सींचे।
हड्डियाँ रिज़्के हुमाँ बनके न बरबाद रहें,
घुल के मिट्टी में मिलें, खाद बने याद रहे।।
हम सितम लाख सहें शायरे बेदाद रहें,
आहें थामे हुए रोके हुए फ़रियाद रहें।
हम रहें या न रहें ऐसे रहें याद रहे,
इसकी परवाह है किसे शाद कि नाशाद रहे।
हम उजड़ते हैं तो उजड़ें वतन आबाद रहे,
हो गिरिफ़्तार तो हों पर वतन आज़ाद रहे।।

किसान

मानापमान का नहीं ध्यान, बकते हैं उनको बदज़ुबान,
कारिन्दे कलि के कूचवान, दौड़ाते, देते दुख महान,
चुप रहते, सहते हैं किसान।।
नज़राने देते पेट काट, कारिन्दे लेते लहू चाट,
दरबार बीच कह चुके लाट, पर ठोंक ठोंक अपना लिलाट,
रोते दुखड़ा अब भी किसान।।
कितने ही बेढब सूदख़ोर, लेते हैं हड्डी तक चिंचोर,
है मंत्रसिद्ध मानो अघोर, निर्दय, निर्गुण, निर्मम, कठोर,
है जिनके हाथों में किसान।।
जब तक कट मरकर हो न ढेर, कच्चा-पक्का खा रहे सेर,
आ गया दिनों का वही फेर, बँट गया न इसमें लगी देर,
अब खायँ किसे कहिये किसान।।

कुछ माँग ले गये भाँड़, भाँट कुछ शहना लहना को निपाट,
कुछ ज़िलेदार ने लिया डाट, हैं बन्द दयानिधि के कपाट,
किसके आगे रोयें किसान ।।
है निपट निरक्षर बाल-भाव, चुप रहने का है बड़ा चाव,
पद-पद पर टकरा रही नाव, है कर्णधार ही का अभाव,
आशावश जीते हैं किसान ।।
अब गोधन की वह कहाँ भीर, दो डाँगर हैं जर्जर शरीर,
घंटों में पहुँचे खेत तीर, पद-पद पर होती कठिन पीर,
हैं बरद यही भिक्षुक किसान ।।
फिर भी सह सहकर घोर ताप, दिन रात परिश्रम कर अमाप,
देते सब कुछ, देते न शाप, मुँह बाँधे रहते हाय आप,
दुखियारे हैं प्यारे किसान ।।
जितने हैं व्योहर ज़मींदार, उनके पेटों का नहीं पार,
भस्माग्नि रोग का है प्रचार, जो कुछ पाये जायें डकार,
उनके चर्वण से हैं किसान ।।
इनकी सुध लेगा कौन हाय, ये खुद भी तो हैं मौन हाय,
हों कहाँ राधिकारौन हाय ? क्यों बन्द किये हैं श्रोन हाय ?
गोपाल ! गुड़ गये हैं किसान ।।
उद्धार भरत-भू का विचार, जो फैलाते हैं सद्विचार,
उनसे मेरी इतनी पुकार, पहिले कृषकों को करें पार,
अब बीच धार में हैं किसान ।।

मजदूरों का गीत

जगत के केवल हम कर्त्तार,
हमीं पर अवलम्बित संसार।
कला कौशल खेती व्यापार,
हवाई यान, रेल या तार।
सभी के एकमात्र आधार,
हमारे बिना नहीं उद्धार ।।
जगत के केवल हम कर्त्तार,
हमीं पर अवलम्बित संसार।

रत्नगर्भा से लेकर रत्न,
विश्व को हमने बीहड़ वन सयत्न।
काटकर बीहड़ वन अविराम,
लगाये रम्य-रम्य आराम।
झोंपड़ी हो या कोई महल,
हमारे बिना न बनना सहल ।।
जगत के केवल हम कर्त्तार,
हमीं पर अवलम्बित संसार।

किसी का लिया नहीं आभार,
बाहुबल रहा सदा आधार।
पूर्ण हम संसृति के अवतार,
हमारे हाथों बेड़ा पार ।।
उठाया है हमने भू-भार,
हुआ हमसे सुखमय संसार।
जगत के केवल हम कर्त्तार,
हमीं पर अवलम्बित संसार।

हाय ! उसका यह प्रत्युपकार,
तुच्छ हमको समझे संसार।
बन गये कितने ठेकेदार,
भोगने को सम्पत्ति अपार ।।
हमारा दारुण हा-हाकार,
उन्हें है वीणा की झनकार।
जगत के केवल हम कर्त्तार,
हमीं पर अवलम्बित संसार ।।

भाग्य का हमें भरोसा दिया,
विभव सब अपने वश में किया।
जहाँ तक बना रक्त पर लिया,
वज्र की छाती, पत्थर हिया।
किसी ने जख़्मेदिल कब सिया,
जिया दिल अपना पर क्या जिया।
जगत के केवल हम कर्त्तार,
हमीं पर अवलम्बित संसार ।।

दिया था जिनको अपना रक्त,
प्राण के प्यासे वे बन गये।
नम्रता पर थे हम आसक्त,
और भी हमसे वे तन गये।।
हाय रे स्वार्थ न तेरा अन्त,
नाश का उद्यत है हा कर्त्तार,
हमीं पर अवलम्बित संसार।।

बहुत सह डाले हैं संताप,
गर्दनें काटीं अपने आप।
न जाने था किसका अभिशाप,
न जाने किन कृत्यों का पाप।।
हो रही थीं आँखें जो बन्द,
पद-दलित होने को सानन्द।
जगत के केवल हम कर्त्तार,
हमीं पर अवलम्बित संसार।।

रचेंगे हम अब नव संसार,
न होने देंगे अत्याचार।
प्रकृति ही का लेकर आधार,
चलायेंगे सारे व्यवहार।।
सिद्ध कर देंगे बारम्बार,
और देखेगा विश्व अपार।
जगत के केवल हम कर्त्तार,
हमीं पर अवलम्बित संसार।।

भक्त की अभिलाषा

तू है गगन विस्तीर्ण तो मैं एक तारा क्षुद्र हूँ,
तू है महासागर अगम मैं एक धारा क्षुद्र हूँ।
तू है महानद तुल्य तो मैं एक बूँद समान हूँ,
तू है मनोहर गीत तो मैं एक उसकी तान हूँ।

तू है सुखद ऋतुराज तो मैं एक छोटा फूल हूँ,
तू है अगर दक्षिण पवन तो मैं कुसुम की धूल हूँ।
तू है सरोवर अमल तो मैं एक उसका मीन हूँ,
तू है पिता तो पुत्र मैं तव अंक में आसीन हूँ।
तू अगर सर्वधार है तो एक मैं आधेय हूँ,
आश्रय मुझे है एक तेरा श्रेय या आश्रेय हूँ।
तू है अगर सर्वेश तो मैं एक तेरा दास हूँ,
तुझको नहीं मैं भूलता हूँ, दूर हूँ या पास हूँ।।
तू है पतित-पावन प्रकट तो मैं पतित मशहूर हूँ,
छल से तुझे यदि है घृणा तो मैं कपट से दूर हूँ।
है भक्ति की यदि भूख तुझको तो मुझे तव भक्ति है,
अति प्रीति है तेरे पदों में, प्रेम है, आसक्ति है।।
तू है दया का सिन्धु तो मैं भी दया का पात्र हूँ,
करुणेश तू है चाहता, मैं नाथ करुणामात्र हूँ।।
तू दीनबन्धु प्रसिद्ध है, मैं दीन से भी दीन हूँ,
तू नाथ! नाथ अनाथ का, असहाय मैं प्रभु-हीन हूँ।
तव चरण अशरण-शरण है, मुझको शरण की चाह है,
तू शीत करता दग्ध को, मेरे हृदय में दाह है।
तू है शरद-राका-शशी, मन चित्त चारु चकोर है,
तव ओट तजकर देखता यह और की कब ओर है।।
हृदयेश! अब तेरे लिए है हृदय व्याकुल हो रहा,
आ आ! इधर आ! शीघ्र आ! यह शोर यह गुल हो रहा।।
यह चित्त-चातक है तृषित, कर शान्त करुणा-वारि से।
घनश्याम! तेरी रट लगी आठों पहर है अब इसे।।
तू जानता मन की दशा रखता न तुझसे बीच हूँ,
जो कुछ भी हूँ तेरा किया हूँ उच्च हूँ या नीच हूँ।
अपना मुझे, अपना समझ, तपना न अब मुझको पड़े,
तजकर तुझे यह दास जाकर द्वार पर किसके अड़े।।
तू है दिवाकर तो कमल मैं, जलद तू, मैं मोर हूँ,
सब भावनाएँ छोड़कर अब कर रहा यह शोर हूँ।
मुझमें समा जा इस तरह तन-प्राण का जो तौर है,
जिसमें न फिर कोई कहे, मैं और हूँ तू और है।।

सागर के उस पार

सागर के उस पार
सनेही,
सागर के उस पार ।
मुकुलित जहाँ प्रेम-कानन है
परमानन्द-प्रद नन्दन है।
शिशिर-विहीन वसन्त-सुमन है
होता जहाँ सफल जीवन है।
जो जीवन का सार
सनेही ।
सागर के उस पार ।।
है संयोग, वियोग नहीं है,
पाप-पुण्य-फल-भोग नही है।
राग-द्वेष का रोग नहीं है,
कोई योग-कुयोग नहीं है।
हैं सब एकाकार
सनेही !
सागर के उस पार ।।
जहाँ चबाव नही चलते हैं,
खल-दल जहाँ नहीं खलते हैं।
छल-बल जहाँ नहीं चलते हैं,
प्रेम-पालने में पलते हैं ।
है सुखमय संसार
सनेही !
सागर के उस पार ।।
जहाँ नहीं यह मादक हाला,
जिसने चित्त चूर कर डाला।
भरा स्वयं हृदयों का प्याला,
जिसको देखो वह मतवाला।
है कर रहा विहार
सनेही !
सागर के उस पार ।।

नाविक क्यों हो रहा चकित है ?
निर्भय चल तू क्यों शंकित है ?
तेरी मति क्यों हुई थकित है ?
गति में मेरा-तेरा हित है।
निश्चल जीवन भार
सनेही !
सागर के उस पार ।।

बदरिया

घूम-घूम बरसी रे बदरिया।
झूम-झूम बरसी रे बदरिया ।।
तप्त हृदय की ताप सिरानी,
हुई मयूरों की मनमानी।
देखो जिधर उधर ही पानी,
भरती सर सरसी रे बदरिया।
झूम-झूम बरसी रे बदरिया ।।
घूम-घूम बरसी रे बदरिया।
झूम-झूम बरसी रे बदरिया ।।
श्यामा-सी इठलाती आयी।
लतिकाएँ लहराती आयी ।।
श्याम रंग दरसी रे बदरिया।
झूम-झूम बरसी रे बदरिया ।।
घूम-घूम बरसी रे बदरिया।
झूम-झूम बरसी रे बदरिया ।।
वन कुंजें वह फूलों वाली।
कालिन्दी वह कूलों वाली ।।
सावन की छवि झूलों वाली,
बिन देखे तरसी रे बदरिया।
झूम-झूम बरसी रे बदरिया ।।
घूम-घूम बरसी रे बदरिया।
झूम-झूम बरसी रे बदरिया ।।

देख नहीं वह शोभा पाती,
अविरल अश्रु-धार बरसाती।
हृदय तड़पता जलती छाती।
विरह-ज्वाल झरसी रे बदरिया,
झूम-झूम बरसी रे बदरिया।।
घूम-घम बरसी रे बदरिया,
झूम-झूम बरसी रे बदरिया।।
आयी चली सवार हवा पर,
कलियुग को समझी थी द्वापर।
रोयी-धोयी क्या पाया पर,
गयी हाय ! मरती रे बदरिया।
झूम-झूम बरसी रे बदरिया।।
घूम-घूम बरसी रे बदरिया।
झूम-झूम बरसी रे बदरिया।।

प्रभात-किरण

(1)

तमराज का शासन देख के लोक में, रोष के रंग में राती चली,
कर में बरछी लिये चंडिका-सी, तिरछी-तिरछी मदमाती चली।
नव जीवन-ज्योति जगाती चली, निशाचारियों को दहलाती चली,
फल कंचन-कोष लुटाती चली, मुसकाती चली बल खाती चली।।

(2)

फूटी जो तू उदयाचल से लटें लम्पट जोरों के भाग्य से फूटे,
टूटी जो तू तमचारियों पै गुम होश हुए उनके दिल टूटे।
लूटी जो तूने निशाचरी माया तो लोक ने जीवन के सुख लूटे,
छूटी दिवा-पति अंक से तू मतवाले मिलिन्द भी बन्दि से छूटे।।

(3)

क्रूर कुकर्मियों का किया अंत, अँधेरे में जो विष-बीज थे बोते,
जाने उलूक लुके हैं कहाँ, फिर प्राण पड़े निज खोते में खोते।
तोल रहे पर मत्त विहंग सरोज पै भृंग निछावर होते,
सोते उमंग के हैं उमगे, लगा आग दी तूने जगा दिये सोते।।

(4)

सुरलोक की है सुर-सुन्दरी तू कि स्वतन्त्रता की प्रतिमूर्ति सुहानी ।
जननी सुमनों की कि सौरभ की सखी धाई सनेही सनेह में सानी ।
जग में जगी ज्योति जवाहर-सी, गई जागृति देवी जहान में मानी ।
नव जीवन जोश जगा रही है, महरानी है तू किस लोक की रानी ।।

(5)

क्षण एक नही फिर होके रहा थिर छिन्न तमिस्रा का घेरा हुआ,
लहराने प्रकाश-पताका लगी न पता लगा क्या वो अँधेरा हुआ ।
फिर सोने का पानी गया पल में, जिस ओर से तेरा है फेरा हुआ,
कहती, 'न पड़े मन मारे रहो, अब उट्ठो सनेही सबेरा हुआ' ।।

बुझा हुआ दीपक

(1)

करने चले तंग पतंग जला कर मिट्टी में मिट्टी मिला चुका हूँ ।
तम-तोम का काम तमाम किया दुनिया को प्रकाश में ला चुका हूँ ।
नहीं चाह सनेही सनेह की और सनेह में जी मैं जला चुका हूँ ।
बुझने का मुझे कुछ दुःख नहीं पथ सैकड़ों को दिखला चुका हूँ ।।

(2)

लघु मिट्टी का पात्र था स्नेह भरा जितना उसमें भर जाने दिया ।
धर बत्ती हिये पर कोई गया चुप चाप उसे धर जाने दिया ।
पर हेतु रहा जलता मैं निशा भर मृत्यु का भी डर जाने दिया ।
मुसकाता रहा बुझते-बुझते हँसते-हँसते सर जाने दिया ।।

(3)

परवा न हवा की करे कुछ भी भिड़े आके जो कीट पतंग जलाये ।
जगती का अँधेरा मिटा कर आँखों में आँख की पुतली होके समाये ।
निज ज्योति से दे नवज्योति जहान को अन्त में ज्योति में ज्योति मिलाये ।
जलना हो जिसे वो जले मुझ-सा बुझना हो जिसे मुझ-सा बुझ जाये ।।

सूर है न चन्द है

फाटत ही खम्भ के अचम्भि रहे तीनों लोक,
शंकित वरुण है पवन-गति मंद है।
घोर गर्जना के झट झपटि झड़ाका जाय,
देहली पे दाब्यो दुष्ट दानव दुचन्द है।।
पूर्यो वर कीन्हौ है अधूरो न रहन पायो,
तोरी देव वन्दि और फार्यो भक्त फन्द है।
नर है न नाहर है, घर है न बाहर है,
दिन है न रात है, न सूर है न चन्द है।।

मन की

संकित हिए सों पिय-अंकित संदेसो बाँच्यो,
आई हाथ थाती-सी 'सनेही' प्रेम-पन की।
नीलम अधर लाल ह्वै के दमकन लागे,
खिंच गई मधु-रेखा मधुर हँसन की।।
स्याम-घन-सुरति सुरस बरसन लागे,
वारें आँस-मोती आस पूरी अँखियन की।
माथ मों छुवाती सियराती लाय-लाय छाती,
पाती आगमन की बुझाती आग मन की।।

□□